विवेक या विनाश

लेखक

बर्ट्रैंड रसेल

अनुवादक

वीरेन्द्र त्रिपाठी

राजकमल प्रकाशन

मूल्य : दो रुपये पचास नये पैसे

अंग्रेजी संस्करण, १९५९

प्रथम हिन्दी-संस्करण : १९६१

प्रकाशक

राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली

मुद्रक

एवरेस्ट प्रेस, दिल्ली-६

प्रस्तावना

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि बर्ट्रैंड रसेल कृत
कॉमनसेंस एण्ड न्यूक्लियर वारफ़ेयर का अनुवाद
हिन्दी में हो रहा है।

बर्ट्रैंड रसेल जीवित दार्शनिकों में महानतम हैं।
वे किसी विचारशून्य कल्पनालोक में नहीं रहते,
बल्कि अपने विचारों को ऐसी भाषा में अभिव्यक्त करते हैं
जो स्पष्टता और प्रभावी शक्ति के लिए प्रख्यात है। नाभिकीय
युद्ध के संबंध में उनका दृढ़ मत है,
क्योंकि यदि ऐसा युद्ध छिड़ा तो उससे
मानव-सभ्यता का अंत हो जायेगा। वे धैर्य और विचारों में
तालमेल करने की वकालत करते हैं, वे
यह नहीं कहते कि कुछ दबकर कोई समझौता किया जाय
अथवा आत्मसमर्पण किया जाय।
मुझे इसमें संदेह नहीं कि हिंदी के पाठक इस अनुवाद से बहुत
लाभान्वित होंगे।

२६-७-६०

—एस० राधाकृष्णन
उप-राष्ट्रपति, भारत।

प्राक्कथन

इस पुस्तक का उद्देश्य शान्तिप्राप्त करने के ऐसे संभव साधनों को बतलाना है जो साम्यवादी राष्ट्रों, नाटो राष्ट्रों और तटस्थ राष्ट्रों, को समान रूप से स्वीकार्य हों। मुझे आशा है कि इस पुस्तक में कहीं भी दोनों पक्षों में से किसी एक का भी पक्षपात नहीं हुआ है। पूर्वी और पश्चिमी जगत की राजनैतिक और आर्थिक प्रणालियों के सम्बन्ध में मेरी धारणायें क्या है, यह मैं बहुधा लिख चुका हूँ; लेकिन नाभिकीय युद्ध के खतरों के विवाद में मेरी वे धारणायें प्रसंगानुकूल नहीं।

इस या उस—वाद से अपील करने की आवश्यकता नहीं, आवश्यकता सिर्फ सामान्य बुद्धि से अपील करने की है। मुझे इस बात का कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता कि वे लोग जो मेरी ही तरह सोचते हैं ऐसे तर्क रखें कि अपनी अपील इस पक्ष से या उस पक्ष से करनी चाहिए या अनुदार दृष्टिकोण वालों के मुकाबले में वामपक्षीय लोगों से अपील करनी चाहिए। यह अपील तो मानव मात्र से है और उन सब से है जो मानव की अस्तित्व-रक्षा की आशा करते हैं।

—बर्ट्रैंड रसेल

विषय सूचो

भूमिका

यह आश्चर्य और कुछ निराशा की बात है कि नाभिकीय युद्ध की रोकथाम के लक्ष्य से चलने वाले आन्दोलनों को समूचे पश्चिमी जगत में वामपक्षी आन्दोलन या किसी ऐसे-वाद से प्रेरित आन्दोलन माना जाता है, जिसे सामान्य लोगों की बहुसंख्या पसंद नहीं करती। नाभिकीय युद्ध के विरोध के स्वरूप की संकल्पना इस प्रकार नहीं करनी चाहिए। उसे तो महामारी के विरुद्ध आरोग्यकारी उपाय के समान समझना चाहिए। नाभिकीय युद्ध से जो खतरा है उसका प्रभाव पूरी मानव जाति पर पड़ेगा और इसलिए इस संबंध में समस्त मानव जाति के हित भी एक जैसे ही हैं। बड़े पैमाने पर उद्जन-बम-युद्ध के फलस्वरूप होने वाले विनाश को जो लोग रोकना चाहते हैं उन्हें इस या उस राष्ट्र, अथवा इस वर्ग या उस वर्ग अथवा इस या उस महाद्वीप के हितों के समर्थन से कोई सरोकार नहीं। उनकी दलीलों का साम्यवाद या लोकतंत्र के गुण दोषों से भी कोई संबंध नहीं। नाभिकीय अस्त्र विरोधी आंदोलन में ऐसी दलीलों का इस्तेमाल होना चाहिए जो पश्चिमी गुटों तथा तटस्थ राष्ट्रों को भी समान रूपसे प्रभावित कर सकें, क्योंकि उन्हें इस या उस दल के विशेष लाभों की नहीं, बल्कि मानव जाति के ही कल्याण की चिन्ता है।

यह घोर दुर्भाग्य का विषय है कि नाभिकीय युद्ध का समूचा प्रश्न गुट राज-नीति के वर्षों पुराने संघर्षों में उलझ गया है। ये संघर्ष इतने प्रचण्ड और आवेश पूर्ण हैं कि इनसे बिल्कुल सीधे-साफ मस्लों को भी समझ पाना व्यापक रूप से कठिन हो जाता है। नाभिकीय अस्त्रों से उत्पन्न नई समस्याओं पर यदि हमें समझदारी से विचार करना है तो हमें पूरे मस्ले पर बिल्कुल भिन्न ढंग से दृष्टिपात करना सीखना चाहिए। जिस प्रकार किसी नई किस्म की महामारी

को मिल-जुल कर रोका जाता है, उसी प्रकार इसको भी सामान्य खतरा समझना पड़ेगा और मिलजुल कर कार्यवाही करनी पड़ेगी।

एक उदाहरण लें। मान लीजिये बर्लिन के कुत्तों में सहसा पागलपन की बीमारी फैल जाय। तो क्या इस बात में किसी को सन्देह है कि इन पागल कुत्तों को खत्म करने के लिये पूर्व और पश्चिम बर्लिन के अधिकारी तुरन्त मिलकर उपाय नहीं करने लगेंगे? मैं नहीं समझता कि दोनों में से कोई भी पक्ष यह दलील देगा: हम इन कुत्तों को इस आशा से खुला ही छोड़ दें कि वे हमारे मित्रों से अधिक शत्रुओं को काटेंगे अथवा यदि उन्हें बिल्कुल खुला नहीं छोड़ना है तो उनके मुँह पर तुरन्त खुल सकने वाली जाली लगा कर सड़कों पर घुमायें, जिससे अगर 'दुश्मन' किसी समय अपने पागल कुत्तों को खुला छोड़ दे तो तुरन्त प्रतिकार किया जा सके। क्या पूर्व और पश्चिम बर्लिन के अधिकारी यह दलील देगें कि 'दूसरी ओर के लोगों' पर इस बात का भरोसा नहीं किया जा सकता कि वे अपने पागल कुत्तों को जान से मारेंगे, इसलिए 'हमारी ओर' के लोगों को प्रतिरोध के रूप में पागल कुत्तों को बनाये रखना चाहिये। यह सब बड़ी विचित्र और बेहूदा बात है और जाहिर है कि किसी को भी यह नीति विवेक पूर्ण नहीं लगेगी, क्योंकि गुट-राजनीति में पागल कुत्तों को निर्णायक शक्ति नहीं माना जा सकता। दुर्भाग्य से नाभिकीय अस्त्रों को, बिल्कुल ग़लत ही, युद्ध में विजयश्री दिलाने में समर्थ माना जाता है, इसलिए कुछ ही व्यक्ति उनके संबंध में उस ढंग से सोचते हैं जिसे स्वस्थ या सामान्य विवेक बुद्धि से सोचना-विचारना कहा जा सके।

आइये, एक इससे भी मौजूँ उदाहरण लें। चौदहवीं शताब्दी में कालाज़ार समूचे पूर्वी गोलार्ध में फैला। पश्चिमी योरुप से लगभग आधी जनसंख्या विनष्ट हो गई और पूर्वी योरुप और एशिया में भी कमोवेश उतना ही विनाश हुआ। उन दिनों में महामारी से लड़ने के लिए आवश्यक ज्ञान उपलब्ध ही न था। आज के युग में अगर इस प्रकार के विनाश की आशंका हो, तो सभी सभ्य राष्ट्र उससे लड़ने के लिए एकजूट हो जायेंगे। यह दलील कोई नहीं देगा कि इस महामारी से हमारे बनिस्बत हमारे दुश्मनों को अधिक हानि पहुँचेगी। इस तरह की दलील जो भी देगा उसे दानवता का देवता ही समझा जायेगा। लेकिन फिर भी, जितने

भयंकर खतरों की नाभिकीय युद्ध से उत्पन्न होने की आशंका है उतने की न तो कालाज़ार से थी और न किसी और महामारी से। इस प्रश्न पर **नाटो देश, वारसा सन्धि वाले** देश और तटस्थ देशों के हित बिल्कुल ही एक-समान हित हैं। सच ही, वही हित जो कालाज़ार से लड़ने में उनके होते। यदि पूर्वी और पश्चिमी जगत के राजनेता और निवासी यह बात समझ लें तो वे बहुत सी कठिनाइयां, जो आज अपार या लगभग ऐसी लगती हैं, दूर हो जयंगी। निस्सन्देह, मैं यह बात माने लेता हूँ कि जिस दृष्टिकोण की पैरवी मैं कर रहा हूँ वह दोनों पक्ष के लोग समान रूप से स्वीकार कर लेंगे। जो कुछ भी होगा यदि उस पर विवेकपूर्ण और गम्भीर ढंग से विचार किया जाय तो नाभिकीय शस्त्रों की समस्याओं संबंधी अनिवार्यतः परिणाम, यही सामंजस्य होगा। इसके लिए आदर्शवादी उद्देश्यों की दुहाई देने की आवश्यकता नहीं, हालांकि उनका प्रयोग भी उचित ही होगा। हां, केवल राष्ट्रीय आत्महितों के उद्देश्यों से ही अपील करना आवश्यक होगा।

अध्याय | एक

कगारवादी नीति जारी रही तो

इस अध्याय में मैं इस बात पर विचार करना चाहता हूँ कि यदि वर्तमान नीतियां जारी रहीं और उनके कारण वास्तविक नाभिकीय युद्ध न भी हुआ तो घटनाओं का संभावित क्रम क्या होगा। अमेरिका के नेशनल प्लानिंग एसोसियेशन के तत्वावधान में प्रकाशित एक प्रशंसनीय रिपोर्ट में इस विषय पर छानबीन की गई है। इस रिपोर्ट को शस्त्र नियन्त्रण द्वारा सुरक्षा की एन. पी. ए. विशेष परियोजन समिति ने तैयार किया है और यह मई सन् १९५८ में वाशिंगटन से प्लानिंग पैम्फ़लेट संख्या १०४ के अन्तर्गत छपी है। उसका शीर्षक है: शस्त्र अनियंत्रित १९७०; आधुनिक शस्त्र टेक्नोलॉजी के परिणाम। इसे उन लोगों ने तैयार किया है जिनका किसी नाभिकीय शस्त्र विरोधी प्रचार से सम्बन्ध नहीं। परन्तु वह, जितनी मानव सुलभ निष्पक्षता और वस्तुनिष्ठा से संभव है उतनी से, तथ्य और संभावनाओं का केवल एक चित्र बनाने में लगे हुए हैं। हालांकि रिपोर्ट में यह बात स्वीकार की गई है, और मैं भी इस अध्याय में यही बात मान कर चल रहा हूँ, कि जिस काल पर हम विचार कर रहे हैं उसमें कोई बड़ा युद्ध नहीं छिड़ेगा, फिर भी इसमें यह स्वीकार किया गया है और स्पष्ट भी है कि अगर वर्तमान नीतियां जारी रहीं तो प्रत्येक क्षण लड़ाई छिड़ जाने की संभावना है। कहा गया है, 'युद्ध का खतरा संभावना ही नहीं, बल्कि जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, यह सभावना कहीं अधिक बढ़ती जाती है और अगर बिना कोई उचित मार्ग

ढूंढे कुछ और समय बीत गया तो फिर यह ख़तरा अवश्यम्भावी हो जायगा'। इसका अर्थ यह हुआ कि जब तक वर्तमान नीतियां जारी रहेंगी व्यापक युद्ध का भय बना ही रहेगा और जैसे-जैसे तथ्यों की जानकारी और अच्छी तरह होगी, यह भय भी बढ़ता जाएगा। बढ़ते हुए भय के फलस्वरूप शस्त्रास्त्र बढ़ेंगे, जिनके कारण खर्च बढ़ेगा और सामाजिक ढांचे की जड़ता में वृद्धि होगी तथा स्वतंत्रता निरन्तर कम होती जाएगी। आतंक और घृणा का निरन्तर किया जाने वाला प्रचार ही देशों को इन सब बोझों को सहने के लिए प्रेरित करेगा। और व्यतीत होते हुए प्रत्येक वर्ष के साथ तकनीकी उन्नति युद्ध को, यदि वह हुआ, अधिक से अधिकतर विनाशक बना देगी। ऐसी परिस्थिति समाज के अधिक समझदार लोगों में सुरक्षित शान्ति की इच्छा जगा सकती है, किन्तु इस बात की अधिक संभावना है कि अधिकांश लोगों में तो यह 'शत्रु' की ओर से पागल कर देने वाले भय का संचार करेगी तथा इस प्रकार की मनोदशा का सृजन करेगी जिसमें युद्ध-विस्फोट निरन्तर रहने वाली आशंका की अपेक्षा कम भयानक प्रतीत होगा।

वर्तमान समय में पुराने किसी भी काल की अपेक्षा हथियारों पर किया जाने वाला खर्च कहीं अधिक है। उपर्युक्त रिपोर्ट के अनुसार अमेरिका सैनिक तैयारी पर प्रति वर्ष ४५० अरब डॉलर खर्च कर रहा है। अमेरिका में सम्पूर्ण राष्ट्रीय उत्पादन का लगभग १० प्रतिशत उत्पादन सैनिक उद्देश्यों के लिए होता है। अनुमान किया जाता है कि सोवियत संघ के सम्पूर्ण राष्ट्रीय उत्पादन का १५ प्रतिशत उसी प्रकार सैनिक उद्देश्यों के लिए होता है। यदि संसार की परिस्थिति और न बिगड़ी और वह ज्यों की त्यों बनी रही तो यह अनुमान लगाया जाता है कि वर्तमान काल से लेकर सन् १९७० ई० तक, शस्त्रों पर १५००० से २०००० अरब डॉलर खर्च हो चुके होंगे। किन्तु निश्चित रूप से यह अनुमान भी कम ही सिद्ध होगा, क्योंकि नए आविष्कारों के कारण अधिकाधिक कीमती शस्त्रों की आवश्यकता पड़ेगी। हम यह नहीं बता सकते कि कौन से नये आविष्कार किए जायंगे, लेकिन यह निश्चित है कि ऐसे आविष्कार होंगे। उनमें से कुछ काफी सस्ते हो सकते हैं। उदाहरण के तौर पर बेक्टीरिया-युद्ध की पद्धतियों को लिया

जा सकता है : इनसे मिसिसिपी और वोल्गा को विषाक्त करना संभव होगा, और इस प्रकार उन सब क्षेत्रों को रहने के अयोग्य बनाया जा सकता है जो जल के लिए इन नदियों पर निर्भर हैं। यदि बैक्टीरिया फैलाने की उपयुक्त पद्धति खोज ली जाए, तो बहुत कम खर्चे से ही व्यापक ध्वंस किया जा सकता है। किन्तु बहुत से संभावित आविष्कारों से इतने सस्ते मूल्य पर संहार करने की आशा नहीं की जा सकती। उदाहरण के तौर पर, मौसम के नियन्त्रण को लीजिए। लापूटा के दार्शनिकों ने अपने द्वीप की परछाईं डालकर विद्रोहियों को एक कृत्रिम स्थायी रात में घेर लिया था और इस प्रकार विद्रोही प्रदेशों को अपने अधीन कर लिया था। शीघ्र ही यह संभव हो सकेगा कि शत्रु के किसी विस्तृत भू-भाग में या तो बहुत अधिक वर्षा हो या बहुत कम, अथवा तापमान उस सीमा तक नीचे गिरा दिया जाए, जहां उपयोगी फ़सलें बिल्कुल न उपजें। यह भी संभव हो सकता है कि ध्रुव की बर्फ़ को गला दिया जाए, ताकि समुद्री सतह से थोड़े ऊँचे विराट भूभागों को जल में बिल्कुल ग़र्क़ कर दिया जाए। ऐसे साधन अभी संभव नहीं हैं किन्तु इनसे भी अधिक भीषण और खर्चीले अन्य साधन हैं, जो कुछ दिनों से इस उन्मादी क्षेत्र में पदार्पण कर चुके हैं।

स्कूल के विद्यार्थियों और राजनेताओं को उपग्रह के निर्माण से प्रसन्नता हुई है। पर पश्चिमी जगत के लोग इस तथ्य से इतने प्रसन्न नहीं हुए, क्योंकि पहिला उपग्रह रूस ने बनाया। अभी तो ये उपग्रह छोटे हैं पर इसका यह तात्पर्य तो नहीं कि वे इतने ही बने रहेंगे। अभी वे आक्रमण करने वाले शस्त्रों से लैस नहीं, पर सभी स्थानों के सैनिक-वादियों की यही आशा है कि शीघ्र ही वे इन शस्त्रों से लैस हो जायेंगे। विद्युत् कम्प्यूटरों के द्वारा उन्हें ऐसा बनाया जा सकता है कि वे एक निश्चित समय पर शत्रु के क्षेत्रों पर 'मृत्यु का वर्षण' कर सकें और जब किसी मित्र क्षेत्र के ऊपर से उड़ रहे हों तो कोई भी ऐसी 'अन्यथा लाभकारक' हरकत न करें। इस प्रकार के शस्त्र बहुत ही क़ीमती होंगे। पर दोनों ओर के लोग यहीं तर्क देंगे : अगर शत्रु के पास वे हैं तो हमें भी उन्हें प्राप्त करने की पूरी कोशिश करनी चाहिए।

और फिर सिर्फ उपग्रह की ही तो बात नहीं। भविष्य में किसी भी दिन

यह दल या वह दल इस प्रकार की प्रोजेक्टाइल छोड़ सकता है, जो चांद में पहुँचें। इस बात की विश्वासपूर्वक आशा की जा सकती है कि कुछ ही समय में चाँद पर मानव को उतारना आसान हो जायेगा। मैंने एक रूसी पुस्तक पढ़ी है—और मुझे इसमें सन्देह नहीं कि उस तरह की पुस्तकें अमेरिका में भी होंगी—जो युवकों को उत्साहित करने के लिए लिखी गयी है और जिसमें सावधानी-पूर्वक इस प्रकार की शर्तों का उल्लेख है, जिनको पूरा करने से लोग चांद में रह सकेंगे। इस पुस्तक में यहां तक कहा गया है कि समय आने पर चन्द्रमा सम्बन्धी वायुमण्डल का भी निर्माण किया जा सकेगा। उल्लिखित पुस्तक की शैली युद्धमूलक शैली के बिल्कुल विपरीत है। इसका उद्देश्य साहसिक भावनाओं को उभारना और भौतिक रुकावटों पर वैज्ञानिक विजय की आशा व्यक्त करना है। परन्तु मुझे भय यह है कि अन्तरिक्ष यात्रा को संभव बनाने के लिए सरकारें जो अपार धन व्यय करना चाहती हैं उनका उद्देश्य बुरा है। आर्म्ड सर्विसेज़ की हाउस कमेटी के सामने बयान देते हुए जनरल पुट ने यह बताया था कि अमेरिकी वायुसेना का लक्ष्य चांद पर मिसाइल-अड्डा बनाना है और यह भी ख्याल है कि अधिक ऊर्जा के व्यय के बिना बारूद भरा मिसाइल चांद से पृथ्वी पर दागा जा सकेगा क्योंकि चांद में एक तो वायुमण्डल नहीं दूसरे आकर्षण शक्ति भी उसमें कम है। उन्होंने घोषणा की कि चांद पृथ्वी पर बसने वाले राज्यों पर जवाबी हमला करने के लिए अड्डे के रूप में बहुत ही लाभकारी सिद्ध होगा। उन्होंने इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि अगर संयुक्त राज्य अमेरिका चांद से जवाबी हमला करने में असफल रहा तो सोवियत संघ द्वारा चांद पर आक्रमण संयुक्त राज अमेरिका के स्थल पर आक्रमण अभियान के एक या दो दिन पहले होगा, क्योंकि उनके विचार से चांद पर यह प्रारम्भिक आक्रमण अमेरिका को उनके खतरे की चेतावनी दे देगा। पर यदि रूसियों ने संयुक्त राज्य अमेरिका के चांद-सम्बन्धी यंत्र-संस्थान नष्ट नहीं किये तो इन संस्थानों से रूस को नष्ट करना अमेरिका के लिए संभव हो जायेगा, भले ही संयुक्त राज्य अमेरिका की भूमि नष्ट भ्रष्ट हो जाय। वायु सेना-अनुसंधान और विकास उप-सचिव रिचर्ड ई० हार्नर ने भी उन के साक्ष्य को पुष्ट किया। इनके विचार से चांद

पर अड्डे निर्माण करने का अर्थ नाभिकीय शस्त्रास्त्र गत्यवरोध को छिन्न-भिन्न करने का एक अवसर है। देशों में सैनिकवादी मनोवृत्ति की यह एक विचित्र विशेषता है। दोनों ही उपर्युक्त सुप्रसिद्ध सज्जन अनिच्छापूर्वक यह मानते हैं कि इसकी संभावना है कि रूस भी चांद पर मिसाइल केन्द्रों का निर्माण कर ले। यह स्पष्ट है कि जो एक तरफ़ के लोग कर सकते हैं वह दूसरी ओर के लोग भी कर सकते हैं। और यदि इस प्रकार की योजना को कार्यान्वित किया गया तो केवल एक ही परिणाम होगा और वह है चांद में युद्ध। यह सही है कि अन्त में जनरल पुट ने यह मान लिया कि चांद में जो कुछ अमेरिका कर सकता है, रूस भी वही कर सकता है। परन्तु उन्होंने इससे जो सिद्धान्त स्थापित किया वह यह था कि अमेरिका को शुक्र और मंगल ग्रहों पर भी कब्ज़ा कर लेना चाहिए। स्पष्टतः इनको वे सोवियत निवासियों की पहुँच से बाहर समझते थे। इन सब अजीबो-गरीब अटकलों को बहुत ही कम प्रकाश मिला और मैं भी इन्हें नहीं जान पाता यदि इनका उल्लेख २० अक्टूबर सन् १९५८ ई० के **आई० एफ़० स्टोन्स वीकली** में न हुआ होता। मैंने सोवियत सरकार की इस प्रकार की योजनाओं का कोई विवरण नहीं देखा, पर यह मानने में कोई आपत्ति नहीं कि उनकी कोई न कोई ऐसी योजना होगी ही।

सैनिक-वादियों की योजनाओं को पढ़ते समय, मैं इस बात की पूरी चेष्टा करता हूँ कि मेरे मन में भय और घृणा के भाव जागे रहें। पर जब-जब मैं इस प्रकार की योजनायें पढ़ता हूँ जिनमें बोलने-चलने वाले लौंदे, जो एक विशिष्ट ग्रह के लिए अपमान का चिन्ह हैं, छोटे-छोटे झगड़ों के लिए देव-भूमि को अपवित्र करने पर तुले हैं, तो बरबस मुझे यह लगता है कि ये मनुष्य जो इस प्रकार की योजनायें बना रहे हैं, एक प्रकार का अधर्म करने के अपराधी हैं। इस बात की कल्पना करना तो आसान है कि अमेरिका की कांग्रेस के चुनाव के समय या सोवियत पार्टी में होने वाले किसी झगड़े में यह प्रश्न उठ सकता कि अमेरिकियों ने चांद से रूसियों को खदेड़ दिया है या रूसियों ने अमेरिकियों को वहाँ से मार भगाया है। इस प्रकार की योजनाओं से आकाशीय नक्षत्रों और प्रकृति के भव्य विकास-क्रम का अपमान होता है और ऐसा लगता है मानो क्रोधी लोग किसी टुच्ची बात पर झगड़ रहे हों। परन्तु मुझे इस

का डर है कि जब तक हम अपने झगड़ों की वर्तमान भीषणता को कम नहीं कर पाते तब तक अधिकांश शक्तिशाली राष्ट्रों की जनता और उनके अनुयायी एक दूसरे को नुकसान पहुँचाने का माध्यम ढूंढने की खातिर भूखे मरने की स्थिति भी स्वीकार करने के लिए तैयार हो जायेंगे।

हमारा ग्रह, पृथ्वी अपने वर्तमान मार्ग पर चलता नहीं रह सकता। ऐसा युद्ध छिड़ सकता है जिसके परिणाम स्वरूप सब लोग या लगभग सब के सब नष्ट हो जायें। अगर लड़ाई न हुई तो आकाशीय ग्रहों पर अभियान होंगे और ऐसा हो सकता है कि इस प्रकार के माध्यम तैयार कर लिए जायें जिनसे उनको छिन्न-भिन्न किया जा सके। चांद फट जाय और गिर पड़े या पिघल ही जाए। मॉस्को या वाशिंगटन या ऐसे कई क्षेत्रों पर ज़हरीले अवशेष गिर पड़ें, जिनका युद्ध से कोई भी नाता न हो। घृणा और नेस्तनाबूद करने वाली भावनायें अति व्याप्त होकर पागलपन को भूमि की वर्तमान सीमाओं से कहीं आगे फैला देंगी। हालांकि मुझे इसमें संदेह है, पर मैं आशा करता हूँ कि राजनेताओं के दिमागों में सुबुद्धि की झलक चमकेगी। परन्तु सुबुद्धि के बिना शक्ति का विस्तार बहुत ही भयावह है और मैं ऐसे लोगों को अधिक दोष नहीं देता जो इसके कारण निराश हो जाते हैं।

परन्तु निराश होना बुद्धिमत्ता नहीं। मनुष्य में केवल भय और घृणा करने की ही क्षमता नहीं, आशा और उपकार की क्षमता भी उसमें है। यदि संसार की जनता पर यह स्पष्ट किया जा सके और इसकी कल्पना करायी जा सके कि किस प्रकार एक ओर तो घृणा और भय के फलस्वरूप नरक उनके सामने मुँह बाये खड़ा है और दूसरी ओर उसके मुकाबले नई दक्षताओं द्वारा आशा और उपकार के स्वर्ग का निर्माण किया जा सकता है तो उनके लिए यह कुछ मुश्किल न होगा कि वे दोनों में किसे चुनें। और तब हमारा आत्म पीड़ित जीव-इंसान वह आनन्द भोग सकेगा, जिसे उसने भूतकाल में कभी नहीं भोगा।

अध्याय | दो

यदि नाभिकीय युद्ध हुआ

बहुत से लोगों ने यह सोच कर कि नाभिकीय युद्ध के फलस्वरूप बहुत विनाश होगा, अपने मन को यह समझा लिया है कि इस प्रकार का युद्ध नहीं होगा। मेरी हार्दिक कामना है कि वे सही हों, और यदि वे सही निकले तो इसका केवल एक ही कारण होगा और वह यह कि बड़ी शक्तियां नई नीतियां अपना लें। परन्तु जब तक दोनों ओर वर्तमान नीतियां जारी हैं, जब तक सामान्य जनता जितना समझती है उससे कहीं अधिक नाभिकीय युद्ध की संभावना बनी रहेगी। इस खतरे का कारण यही है कि दोनों ओर के प्रमुख राजनेता यह विश्वास करते हैं कि उनकी ओर के लोग पुराने ढंग की विजय प्राप्त कर सकते हैं। अमेरिकी कांग्रेस की एक समिति के सामने बोलते हुए श्री डलेस ने यह चेतावनी दी थी कि अमेरिकी जीवन-प्रणाली को वास्तविक युद्ध की अपेक्षा शीत युद्ध से कहीं अधिक खतरे का सामना करना पड़ रहा है। प्रकाशित समाचार के अनुसार उन्होंने कहा कि अमेरिका खूनी लड़ाई तो जीत सकता है, पर 'मैं नहीं कह सकता कि हम इस शीत युद्ध में जीत पायेंगे या नहीं'। मैं यह उद्धरण २७ जून, सन् १९५८ के 'द टाइम्स' से दे रहा हूँ। उधर, श्री ख्रूशोफ़ ने एक पत्र में मुझे लिखा :

'हमारे विरोधी हमें चाहे जितना बदनाम करें, सिर्फ़ इसी से समाजवादी देश मिट नहीं सकेंगे और साम्यवाद जो सबसे अधिक प्रगतिशील और मानववादी ज्ञान है जीवनशेष नहीं हो जायेगा।

'शस्त्रों के बल से साम्यवाद को नष्ट करने के प्रयत्न तो कई बार हो चुके हैं ! ...

'मैं सोचता हूँ कि यदि साम्राज्यवाद ने एक नया विश्वयुद्ध छेड़ा तो वह उसी में नष्ट हो जायेगा। लोग ऐसी प्रणाली को अंगीकार नहीं करना चाहेंगे जो लड़ाइयों के बिना रह नहीं सकती, जो मुट्ठी भर इजारेदारों को और धनवान बनाने के लिए करोड़ों मनुष्यों को मारे बिना जीवित नहीं रह सकती।

मुझे इसमें सन्देह नहीं कि श्री डलेस और श्री ख्रूशोफ़ दोनों के बहुत से अनुयायी हैं जिनका यह अटल विश्वास है कि नाभिकीय युद्ध के फलस्वरूप एक ऐसे संसार की स्थापना होगी जिसे वे अच्छा समझते हैं। इस अध्याय में मैं उन कारणों का उल्लेख करूंगा जिनके आधार पर मैं यह समझता हूँ कि दोनों ओर के लोग पूर्णतया ग़लती पर हैं। यह खतरनाक विश्वास है : एक तो इसलिए कि इससे युद्ध की आशंका बढ़ती है और दूसरे इसलिए कि यह विवेकपूर्ण समझौते के मार्ग में बाधक है।

नाभिकीय युद्ध कैसे प्रारम्भ होगा, इस सम्बन्ध में विभिन्न संभावनायें हो सकती हैं। दोनों में से किसी ओर से अचानक आक्रमण हो और वह शुरू हो जाय। और यह भी सम्भव है कि पहिले साधारण युद्ध हो फिर वह नाभिकीय युद्ध में परिवर्तित हो जाय। अमेरिकी सरकार ने बहुत ज़ोर देकर कहा है कि वह कभी भी पहिले नाभिकीय युद्ध नहीं करेगी, पर इस वक्तव्य के साथ भी एक विशेषण जुड़ा हुआ है। ब्रिटेन और अमेरिका दोनों ने ही यह कहा है कि यदि रूस किसी नाटो देश पर अ-नाभिकीय आक्रमण करेगा तो पश्चिम नाभिकीय शस्त्रों से उसका प्रत्युत्तर देगा। इससे यह भी समझा ही जा सकता है कि रूस के सामने ऐसा कोई प्रयोजन नहीं होगा कि जिससे वह नाभिकीय शस्त्रों का प्रारम्भिक प्रयोग करने में हिचकिचाये और यह भी कि पूर्वी और पश्चिमी जगत के बीच कोई भी युद्ध प्रारम्भ में ही आवश्यक रूप से नाभिकीय होगा।

यह तो स्पष्ट ही है कि दोनों में से जो पहिले आक्रमण करेगा वही अपनी इस पहल के कारण लाभ की स्थिति में रहेगा। परन्तु पश्चिमी देशों, और शायद रूस में भी, इस बात की सुनिश्चितता पर अधिक ध्यान दिया गया है कि अचानक

किया गया आक्रमण निर्णयात्मक नहीं होगा और उसके कारण प्रत्याक्रमण असम्भव नहीं हो सकेगा। इसलिए मेरा विचार है कि हमें यह मान लेना चाहिए कि पूर्वी और पश्चिमी जगत में एक दूसरे के विरुद्ध नाभिकीय ध्वंस की सम्पूर्ण सम्भाव्य शक्ति को समान रूप से विकसित किया जाएगा।

इस पर विवाद हो सकता है कि यह ध्वंस कितना संपूर्ण होगा। कुछ आशावादी लोग, जिन्हें यह डर है कि उनकी ओर वाले शायद लड़ाई से कतरा जायें, यह मानते हैं कि मानव जाति का अधिक से अधिक ३० प्रतिशत नष्ट होगा, और इतनी हानि को वह शान्तिपूर्वक सह लेंगे। परन्तु मेरा विचार है कि उन लोगों की सम्मतियाँ, जिनमें तर्कसंगत अनुमान करने की चतुराई थी और अवसर था इससे कहीं अधिक निराशापूर्ण परिणामों पर पहुँचाती हैं। फिर भी, इस बात पर ज़ोर देना आवश्यक है कि जब तक घटना न घटे तब तक इस सम्बन्ध में कोई बात नहीं कही जा सकती।

आइये, सबसे पहिले हम जनरल गैविन का एक वक्तव्य लें। जब उन्होंने यह वक्तव्य दिया तब वे अमेरिका के सैनिक अनुसंधान और विकास के मुख्याधिपति थे। वे सायमिंग्टन सिनेट समिति के सामने गवाही दे रहे थे। उनसे पूछा गया :

'अगर हम नाभिकीय युद्ध में फंस गये और हमारे सामरिक दृष्टि से स्थिति-सम्पन्न वायु बेड़े ने रूस पर नाभिकीय शस्त्रों द्वारा करारा आक्रमण किया, जिसके फलस्वरूप शस्त्र इस प्रकार से फूटे कि बहती हुई हवा उन्हें रूस के ऊपर से दक्षिण-पूर्व को ले गई तो इसके प्रभाव से जो मृत्यु होंगी, वे कितनी होंगी ?'

जनरल गैविन ने उत्तर दिया, 'आज की योजना के अनुमान के अनुसार करोड़ों लोग मृत्यु को प्राप्त होंगे। वायु जिस ओर चलेगी यह इस पर ही निर्भर है। वैसे दोनों ओर के बारे में यही अनुमान है : यदि हवा दक्षिण-पूर्व की ओर चली, तो मौतें अधिकांशतः सोवियत संघ में होंगी, हालांकि मृत्यु जापानियों तक भी पहुँचेगी और शायद नीचे फ़िलिप्पाइन क्षेत्र में भी लोग मृत्यु को प्राप्त हों। यदि हवा उल्टी ओर बही तो पश्चिमी योरुप में दूर-दूर तक मौतें होंगी।'

अधिकारियों को यह उत्तर अच्छा नहीं लगा, हालांकि उन्होंने इसकी यथार्थता के सम्बन्ध में कोई सन्देह प्रकट नहीं किया। इस बात पर विश्वास करने

का पर्याप्त कारण है कि वे अमेरिका के अधिकारियों के मत को ही प्रकट कर रहे थे, हालांकि ये अधिकारी यह नहीं चाहते थे कि ये मत उस समय प्रकाशित किये जायें।

अमेरिका में हो सकने वाली संभावित मौतों के सम्बन्ध में जनरल गैविन के वक्तव्य से भी आधिकारिक अनुमान फ़ेडरल सिविल डिफ़ेन्स एडमिनिस्ट्रेशन ने लगाया। (अनुमानतः ऐसे ही अनुमान रूस में भी लगाये गये होंगे और उसी तरह स्वीकार भी कर लिये गये होंगे।) इस वक्तव्य में इस बात पर विचार किया गया है कि यदि २५०० मेगाटोन की संयुक्त शक्ति वाले नाभिकीय शस्त्र अमेरिका पर गिरा दिये गये तो क्या होगा। यदि हम सन् १९५० की जनगणना के अनुसार जनसंख्या को लें, यथा १५१० लाख, तो उनका अनुमान है कि पहिले दिन ३६० लाख व्यक्ति मर जायेंगे, ५७० लाख आहत होंगे और छठे दिन तक ७२० लाख व्यक्ति मर चुकेंगे और २१० लाख आहत हो चुकेंगे। शेष रहेंगे ५८० लाख व्यक्ति जो अनाहत होंगे। श्री डलेस की सरकार ने ही यह अनुमान लगाया है, इसलिए हमें यह मान लेना चाहिए कि यदि रूस में मरने वालों की संख्या इससे कहीं अधिक होगी तो क्या वे इस परिणाम को भी जीत ही समझेंगे। उल्लिखित संख्या को, जो सन् १९५० की जनसंख्या के आधार पर है, उसी अनुपात से बढ़ा देना चाहिए जितनी कि आज की बढ़ी हुई जनसंख्या है।

लेकिन सिर्फ आंकड़े देने से उस स्थिति का सही अनुमान नहीं किया जा सकता जो उस समय होगी। पहिली बात तो यह कि जिन लोगों को अनाहतों में गिना गया है उनमें से बहुतेरे निश्चय ही यहां से वहां आने जाने पर रेडियमधर्मी राख के बिखराव के फलस्वरूप बीमार पड़ेंगे। दूसरे यह कि, आहतों की चिकित्सा का उचित प्रबन्ध नहीं हो पायेगा, क्योंकि दवाइयां और अस्पताल भी तो नष्ट होंगे और भारी संख्या में चिकित्सकों और नर्सों की भी मृत्यु हो चुकी होगी। तीसरे यह कि, संचार और जल-संभरण की व्यवस्था लगभग पूर्णतः नष्ट हो चुकी होगी, इसलिए बड़े नगरों की बची हुई जनसंख्या का संभरण करना असंभव हो जायेगा। चौथे यह कि, मल-मूत्र बहा ले जाने वाली नालियां आदि इतनी नष्ट हो चुकेंगी कि सम्भवतः भयानक महामारी फैलेगी। इसके साथ ही यह बात भी

है कि इस बारे में निश्चित होना असम्भव है कि इस प्रकार की भयानक दशा में किसी प्रकार की सामाजिक संसक्ति रह भी पायेगी या नहीं। इन्हीं सब कारणों से यह आशा की जानी चाहिए कि वास्तविक मृतकों की संख्या उपर्युक्त ७२० लाख से कहीं अधिक होगी।

यह सभी विध्वंस, जिस पर हमने अब तक विचार किया है, एक ही दिन की बम-वर्षा का परिणाम होगा और ऐसी आशा करने के कई कारण हैं कि नाभिकीय युद्ध के दौरान में इस प्रकार के कई दिन होंगे। राष्ट्रीय आयोजना संघ की रिपोर्ट में, जिसका ज़िक्र मैंने पिछले अध्याय में किया है, इस ओर संकेत है कि, **एफ सी डी ए** दो माह की लड़ाई के दौरान में रेडियमधर्मी राख द्वारा जितनी मौतों का अनुमान लगा पाया है उसके अलावा आने वाले पचास वर्षों में और भी जेनेटिक (प्रजनन) प्रभावों, ट्यूमर प्रवेश तथा अन्य इसी प्रकार की व्याधियों से आहत होंगे, जिवकी संख्या निश्चित नहीं की जा सकती। यह भी हो सकता है जिन देशों में बम विस्फोट हों, उनमें बाद में होने वाले आहतों की संख्या तुरन्त आहत होने वालों के बराबर ही हो। इन आने वाले पचास वर्षों में विश्वव्यापी रेडियमधर्मी राख के बिखराव से संसार में ट्यूमर प्रवेश और जेनेटिक (प्रजनन) प्रभावों से लगभग १०० लाख व्यक्ति और मर जायेंगे। यह उल्लेखनीय है कि तटस्थ देशों की हानि, युद्ध में भाग लेने वालों की कुल हानि का ५ से १० प्रतिशत से कम तो किसी दशा में नहीं होगी।

ऐसा विश्वास करने का पर्याप्त कारण है कि यह सब उसी एक दिन में हो जायगा जिस दिन सोवियत संघ अमेरिका पर बमबारी करेगा। आगे के दिनों में अमेरिका में हताहतों की संख्या बढ़ जायेगी। ब्रिटेन समेत पश्चिमी **योरुप** में अमेरिका के मुकाबिले हानि और अधिक होगी, क्योंकि इनमें आबादी घनी बसी हुई है। मेरा विचार है कि बचे हुए लोगों से, जो भूख से व्याकुल और अशक्त होंगे तथा स्वस्थ बच्चों को जन्म देने में अयोग्य होंगे, इसी बात पर तसल्ली कर लेने की आशा की जायगी कि रूसियों की दशा भी उनसे कुछ अच्छी नहीं है। क्या श्री डलेस और श्री ख्रूशोफ़ यह सब समझते हैं ? और क्या वे समझते हैं कि यही विजय होगी ? या उन्होंने संभावित परिणामों से परिचित होने

का कष्ट ही नहीं उठाया ?

रेडियमधर्मी राख के बिखराव के अवशेष से लोगों की अन्ततः जितने परिणाम में हानि होगी उसका अनुमान करना बिलकुल असंभव है । पहिले इस राख के बिखराव से उन क्षेत्रों में अधिक हानि होगी जो बम वर्षा के स्थानों के निकट होंगे, पर कुछ समय बाद यह राख संसार में चारों ओर काफ़ी ढंग से बंट जायेगी । अब तक जो विस्फोट परीक्षण किए गए हैं, उनका प्रभाव उन स्थानों पर भी पड़ा है जो परीक्षण स्थानों से काफी दूर थे । वहां काफ़ी अधिक मात्रा में अत्यन्त हानिकारिक पदार्थ प्राप्त हुए; जैसे, स्ट्रोनियम ९०, सीज़ियम १३७, और कार्बन १४ । अमेरिका में 'क्लीन' बमों के बारे में बड़ी चर्चा हुई है । इनमें स्ट्रोनियम ९० और सीज़ियम १३७ तो कम होगा पर कार्बन १४ कम नहीं होगा. जो बहुत धीरे नष्ट होता है । इसका अर्ध जीवन ८०७० वर्ष का होता है और यह हज़ारों वर्षों तक विनाशकारी जेनेटिक (प्रजनन) प्रभाव डालता रहेगा । अब तक जो परीक्षण हो चुके हैं वे इतनी बुराइयां उत्पन्न कर रहे हैं, जिनकी विकरालता अभी तक निश्चित नहीं हो पाई है । डा० पालिंग ने यह अनुमान लगाया है (नो मोर वार, पृष्ठ ७५) कि यदि परीक्षण जिस गति से आज हो रहे हैं उसी गति से होते रहे तो इस प्रतिवर्ष परीक्षण से २३०,००० ऐसे बच्चे जन्मेंगे जो भयंकर रूप से व्याधि-ग्रस्त होंगे और ४२०,००० भ्रूण में ही या होते ही मर जायेंगे । इसलिए यदि तथाकथित 'क्लीन' बमों का ही प्रयोग किया गया तो भी रेडिययमधर्मी राख के बिखराव के कारण होने वाली हानि एक अंश तक ही कम होगी । और मुझे ऐसा कोई कारण नहीं दिखता कि मैं यह आशा करूं कि ये बम इस्तेमाल किये ही जायेंगे । इस प्रकार के बम के समर्थक डा० लिबी यह कहते हैं कि वह इन बमों का समर्थन मानवीय प्रयोजनों के कारण ही करते हैं । मैंने उनसे यह पूछा कि क्या रूसियों को 'क्लीन' बम सम्बन्धी अमेरिकी अनुसन्धान के बारे में बता देना चाहिए, तो उन्होंने बहुत क्रोधित होकर कहा कि यह तो ग़ैरकानूनी बात होगी । इसका तात्पर्य यही है कि उनमें जो मानवीय भावनायें रूसियों के प्रति हैं, वही भावनायें वे अपने देशवासियों-के प्रति नहीं रखना चाहते । वास्तव में बात ऐसी नहीं हो सकती और यह

तथ्य है कि 'क्लीन' बम की बात करने में कुछ भी तत्व नहीं है।

फ़ेडरल सिविल डिफ़ेन्स एडमिनिस्ट्रेशन (संघीय नागरिक प्रतिरक्षा प्रशासन) द्वारा प्रस्तुत चित्र काफी भयावह है, परन्तु जैसी प्रतिरक्षा मंत्री श्री चार्ल्स विल्सन ने एक सिनेट समिति को सूचना दी, यह याद रखने योग्य है कि 'इस ध्वंस को कर सकने की हमारी क्षमता स्थिर नहीं। यह उन्नत हो रही है और उन्नत होती रहेगी'। वे अमेरिका की क्षमता की बाबत कह रहे थे पर हमें यह मान लेना चाहिए कि रूस के सम्बन्ध में भी यही सत्य है। नाभिकीय युद्ध से सम्भावित विनाश का परिणाम प्रत्येक बीतते हुए वर्ष के साथ बढ़ता ही जाता है। जब चांद और शायद शुक्र और मंगल ग्रहों का उपयोग बमबारी करने के स्थानों के रूप में होने लगेगा, जिसकी आशा की जाती है, तो सम्भावित ध्वंस के परिणामों में आशातीत बढ़ोतरी हो जायगी। और अब तो हम एच-बमों को बहुत विनाशक समझते हैं, पर एक समय—केवल तेरह वर्ष पहिले ऐसा था—जब हम ए-बमों से ही कांप-कांप उठते थे। नोबेल के विचार से तो बारूद ही इतनी विनाशक शक्ति थी कि उसी से युद्ध का अन्त हो जाएगा। अगर नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ तो शीघ्र ही हम एच-बमों के आमोद पूर्ण और सुखद दिनों को याद करेंगे और इस पर अचरज करेंगे कि इस प्रकार के सामान्य शस्त्रों से कोई-कैसे डरता होगा। मृत्यु की ओर होने वाले इस अभियान में इसके सिवा और कोई निर्णय संभव नहीं कि हम बिल्कुल सीधे पीछे मुड़ें और सुबुद्धि तथा जीवन की ओर अभियान करें। अगर हम वर्तमान मार्ग पर चलते रहे तो यह आवश्यक रूप से मानव जाति को विलुप्तीकरण की ओर ले जायगा। विनाश की ओर दौड़ते रहने और मिट जाने पर भाग्य ने हमें बाध्य नहीं किया है। मानव की इच्छा शक्ति के परिणाम स्वरूप ही यह सब कुछ हो रहा है कि और मानव की इच्छा शक्ति ही इसे रोक भी सकती है।

अध्याय | तीन

नाभिकीय शस्त्रों के युग में झगड़े कैसे तय किये जायें

मैं यह मान लेता हूँ कि निम्न तीन प्रस्तावों पर किसी को कोई आपत्ति नहीं होगी :

(१) बड़े पैमाने पर नाभिकीय युद्ध न केवल युद्ध-रत पक्षों के लिए बल्कि सारी मानव जाति के लिए विनाशक होगा और उससे ऐसा कोई परिणाम नहीं निकलेगा जो किसी विवेकशील व्यक्ति के लिए वांछनीय हो।

(२) छोटा युद्ध होने पर इसकी बहुत आशंका रहती है कि कहीं यह युद्ध महायुद्ध में न बदल जाय और कई छोटे युद्ध होने के कारण अन्ततः यह आशंका लगभग निश्चितता का रूप धारण कर लेगी।

(३) यदि जितने भी नाभिकीय अस्त्र अभी हैं, उनको नष्ट कर दिया जाय और इस प्रकार का समझौता हो जाय कि अब इस तरह के नए अस्त्र नहीं बनाये जायेंगे तो भी लड़ने वाले उभय पक्षों को निषिद्ध शस्त्रों के बनाने का समय मिलते ही कोई भी गम्भीर युद्ध नाभिकीय युद्ध में परिवर्तित हो जायगा।

इन तीन प्रतिपादनों से यह प्रकट है कि यदि हम अकल्पनीय विपत्तियों से बचना चाहते हैं, तो हमें सब युद्धों से, चाहे बड़े हों या छोटे और जान-बूझ कर नाभिकीय हों या न हों, बचने का मार्ग ढूंढना ही पड़ेगा।

मेरा विचार है कि जिन लोगों ने इस विषय का अध्ययन किया है उनमें से अधिकांश इस निष्कर्ष को थोड़े बहुत अनिर्णयात्मक ढंग से स्वीकार करते हैं।

परन्तु पूर्वी और पश्चिमी जगत, दोनों ओर के राजनेता कोई ऐसा संभव कार्यक्रम निश्चित नहीं कर पाये हैं जिससे युद्ध की रोकथाम की जा सके । जब से नाभि-कीय गत्यवरोध स्पष्ट हुआ है, पूर्वी और पश्चिमी जगत की सरकारों ने उस नीति को ग्रहण कर लिया है जिसे श्री डलेस **कगारवादी** कहते हैं । मुझे बताया गया है कि बहुत धनी अमेरिकी एक खेल खेलते हैं, उसी के अनुकरण पर यह नीति अपनाई गयी है । इस खेल को 'चिकिन !' कहते हैं । यह खेल इस प्रकार खेला जाता है: एक लम्बी सीधी सड़क को तय करके उसके बीचोंबीच एक सफेद रेखा खींच दी जाती है । फिर दो बहुत तेज कारें विपरीत दिशा से एक दूसरे की ओर दौड़ती हैं । दोनों कारों को अपने एक ओर के पहिए उस सफेद रेखा पर रखने चाहिए । जैसे-जैसे कारें एक दूसरे के पास आती हैं परस्पर विनाश अधिकाधिक अवश्यम्भावी होता जाता है । यदि एक कार दूसरी कार से पहले उस सफेद रेखा से छिटक जाती है तो दूसरी कार का चालक गुज़रते हुए चिल्लाता है 'चिकन !'; और जो उस रेखा से छिटका हुआ होता है वह सभी के अनादर का पात्र बन जाता है । इस खेल को पतनोन्मुख और अनैतिक समझा जाता है, क्योंकि इसे धनाढ्य युवक खेलते हैं। हालांकि इस खेल में खिलाड़ियों की जान जाने का डर रहता है, परन्तु जब सुप्रसिद्ध राजनेता, जो अपनी ही नहीं बल्कि करोड़ों मानवों की जानें खतरे में डाल देते हैं, इस प्रकार का खेल खेलते हैं तो दोनों पक्ष के लोग यह समझते है कि एक ओर के राजनेता उच्च कोटि की बुद्धिमानी और साहस दिखा रहे हैं और निंदनीय केवल दूसरी ओर के राजनेता हैं। निस्संदेह, यह बात मूर्खतापूर्ण है। इस प्रकार के आश्चर्य जनक रूप से भयानक खेल को खेलने के लिए दोनों को ही दोषी समझना चाहिए । एकाध बार तो हो सकता है कि इस खेल में दुर्भाग्य का सामना न करना पड़े पर देर-सबेर यह महसूस होगा ही कि अपमान का घूँट पीने से तो नाभिकीय-मरण ही अच्छा है । एक ऐसा क्षण भी आ जायगा, जब दोनों में से किसी ओर के लोग एक दूसरे की उपहासपूर्ण किलकारी सहन नहीं कर पायेंगे। और जब वह क्षण आ जाएगा तो दोनों ओर के राजनेता विश्व को ध्वंसाग्नि में झोंक देंगे। ।

व्यावहारिक राजनीतिज्ञ इस बात को मानते हैं, पर उनका तर्क यही है कि

इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं। यदि एक ओर वे लोग हों जो विश्वयुद्ध का खतरा नहीं उठाना चाहते और दूसरी ओर वे लोग हों जो ऐसा खतरा उठा लेने के लिए तैयार हैं तो हरेक प्रकार के समझौते की बातचीत में वही लोग जीतेंगे, जो खतरा झेलने को तैयार हैं। और अन्ततः वे दूसरी ओर के लोगों को पूरी तरह क्लीव बना देंगे। व्यावहारिक राजनीतिज्ञ यह दलील देगा—'शायद, भयपूर्ण विकल्प दृष्टि में रखते हुए विवेकी पक्ष का पागल पक्ष के आगे झुक जाना आदर्श बुद्धिमत्ता होगी, लेकिन बुद्धिमानी हो या मूर्खता, कोई भी राष्ट्र जिसे आत्म गौरव का बोध होगा, इस प्रकार की लज्जास्पद स्थिति को बहुत दिनों तक चुपचाप स्वीकार नहीं करेगा। इसलिए निश्चय ही हमें कगारवाद या आत्म-समर्पण दोनों में से किसी एक को चुनना पड़ेगा।'

पिछले वर्षों में दोनों ही पक्ष के लोगों की नीति का आधार यही दृष्टिकोण रहा है। मैं यह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं कि कगारवाद या आत्म-समर्पण ही दो मार्ग हैं, जिनमें से किसी एक को चुनना आवश्यक हो। परिस्थिति को ध्यान में रखें, तो साफ़ है कि आज एक बिल्कुल भिन्न आचरण की आवश्यकता है। यह आचरण सत्ता के लिए संघर्ष करने के प्रयोजन पर आधृत नहीं होगा, बल्कि उसका आधार ऐसे प्रयोजन पर होगा जो परस्पर विरोधी पक्षों के सामान्य कल्याण और सामान्य हितों के अनुकूल होंगे। सबसे पहले जो कुछ करने की आवश्यकता है वह मनोवैज्ञानिक है। मनोदशा और लक्ष्य में परिवर्तन होना आवश्यक है। जहां तक सरकारों का सम्बन्ध है, सम्भवतया, पहल वे राष्ट्र कर सकते हैं जो किसी गुट से सम्बन्धित नहीं। लेकिन आम तौर पर ऐसे इच्छित आचरण की पहले पहल पैरवी पूर्वी और पश्चिमी जगत के किसी न किसी गुट से सम्बन्धित राष्ट्रों में ऐसे लोगों या ग्रुपों को करनी पड़ेगी जो अपने-अपने राष्ट्रों में सम्मानित हों।

पूर्वी और पश्चिमी जगत, दोनों ओर के देशों के सामने जो तर्क रखे जायेंगे उनका स्वरूप कुछ ऐसा होगा: प्रत्येक पक्ष के कुछ महत्वपूर्ण स्वार्थ हैं जिन्हें वह छोड़ने के लिए तैयार नहीं। दोनों में से कोई भी राष्ट्र साथ ही साथ अपने आप को पराजित किए बिना दूसरे को पराजित नहीं कर सकता। जिन स्वार्थों के लिए

दोनों ओर के लोगों में संघर्ष है, वह उन स्वार्थों से जिन पर वे एक मत हैं कहीं कम महत्वपूर्ण हैं। दोनों के सामान्य स्वार्थों में प्रथम और सबसे महत्वपूर्ण है अस्तित्व बनाये रखने का स्वार्थ। नाभिकीय शस्त्रों की प्रकृति के कारण ही यह दोनों का स्वार्थ सामान्य हो गया है।

अमेरिका वासियों या उनमें से कुछ की यह इच्छा हो सकती है कि दुनियां में कोई भी रूसी न रहे, और सम्भवतया रूसी या उनमें से कुछ ऐसे संसार की कामना करें, जिसमें अमेरिकी न हों, लेकिन रूसी और अमेरिकी दोनों में से कोई भी ऐसे संसार की कामना नहीं करना चाहेगा कि दोनों ही राष्ट्र संसार से मिट जायं। चूंकि यह मान ही लेना चाहिए कि रूस और अमेरिका के बीच युद्ध हुआ तो उससे दोनों ही मिट जायंगे, इसलिए शांति की सुरक्षा में दोनों देशों का हित सामान्य है। इसलिए अपने अस्तित्व को बनाये रखना ही नीतियों का सबसे बड़ा लक्ष्य होना चाहिए।

समझौते के लिए दूसरा प्रेरक है, शस्त्रास्त्र की होड़ के फलस्वरूप पड़ने वाले आर्थिक भार से बचने की आवश्यकता। अगर वर्तमान नीतियां जारी रहीं तो समय बीतने के साथ यह भार निरन्तर बढ़ता जायेगा। अधिकाधिक क़ीमती शस्त्रों का आविष्कार किया जायेगा, उपभोग्य जिन्सों के उत्पादन क्षेत्र में लगी श्रम-शक्ति को संहारक शस्त्रों के निर्माण में अधिकाधिक लगा दिया जायेगा और वह दिन दूर नहीं रहेगा जब दोनों पक्षों की जनता निर्वाह योग्य स्तर पर पहुँच जायेगी। ऐसे नये आविष्कार, जो किसी और स्थिति में लाभप्रद होते, अब लाभदायी नहीं रहेंगे, क्योंकि उत्पादिता में होने वाली प्रत्येक वृद्धि से श्रमिक उसी में लग जायेंगे। अगर एक पक्ष दूसरे से पहले इस पागलपन के विरुद्ध विद्रोह कर दे तो उसे हार जाने का जोखिम उठाना पड़ेगा और भयभीत करने वाले खतरे से उत्पन्न कटु वातावरण में, इस जोखिम से किसी भी कीमत पर बचना ही आवश्यक प्रतीत होगा।

दोनों गुटों में तनाव की स्थिति समाप्त होने से न केवल बुराइयों की रोक थाम होगी, बल्कि बहुतेरी अच्छाइयां भी प्राप्त होंगी। वैज्ञानिक तकनीक में संसार के हरेक हिस्से में, और विशेषकर उन हिस्सों में जो ज़्यादा गरीब हैं,

जीवन स्तर को उन्नत करने की क्षमता आ गई है। एशिया और अफ्रीका में आज के अमेरिका के मुकाबले रहन-सहन का स्तर बहुत नीचा है—इसका कारण इन्सान की बेवकूफी के सिवा और कुछ नहीं है। लेकिन अगर अस्त्रों की होड़ जारी रही तो अमेरिका में रहन-सहन का स्तर भी धीरे-धीरे नीचे गिरने लगेगा और उसी स्तर पर आ जाएगा जहां आज संसार के गरीब हिस्से हैं। और वैज्ञानिक तकनीक से जो सार्वजनिक खुशहाली संभव हो गई है, उसके स्थान पर सार्वजनिक ग़रीबी आ जायगी और वह इतनी ही भीषण होगी जितनी कि पारस्परिक घृणा के कारण प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्र बरदाश्त नहीं कर पायेंगे।

पूर्वी और पश्चिमी जगत की वर्तमान लड़ाई केवल भौतिक रूप में ही हानिकारक नहीं। नैतिकता और भावात्मकता की दृष्टि से तो यह और भी हानिकारक है। उच्चतम सरकारी सत्ता ने यह कहा है कि अगर ब्रिटेन नाभिकीय युद्ध में फंस गया तो सिविल आबादी को बचाने का कोई गम्भीर प्रयत्न नहीं किया जायेगा। लेकिन जो उन मिसाइलों (प्रेक्षेपास्त्रों) और बमों के इंचार्ज होंगे, जो रूस की ओर छोड़ जायेंगे उन्हें सिविल नागरिकों से अधिक समय तक जीवित रखा जायगा ताकि अपने अन्तिम क्षणों में भी वे रूस में लाखों को मौत के घाट उतार सकें। अन्तिम बचे हुए लोग यह जानते हुए मरेंगे कि अब उनके राष्ट्र का कोई अस्तित्व बाकी नहीं बचा है, लेकिन उनके मन में व्यर्थ ही बदला लेने का (या अनुमानतः कुछ इसी किस्म का) सुन्दर विचार हिलोरें लेता होगा। यह बात मैं ब्रिटिश नीति की विशेष आलोचना करने की दृष्टि से नहीं कह रहा। दोनों ही विरोधी गुटों में इसी प्रकार की नीति की पैरवी की जाती है। बहुधा इसकी मदद के लिए धर्म को भी घसीट लिया जाता है और बहुतेरे लोग सद्भावना से, किन्तु यथार्थतः ग़लती से, यह विश्वास करते हैं कि इसे आदर्शवादी उद्देश्यों के आधार पर उचित ठहराया जा सकता है। चाहे जितनी भी सद्भावना पूर्ण हो पर जिस मनोवृति से इस प्रकार का दृष्टिकोण संभव है वह नैतिक दृष्टि से भयानक है और उन लोगों के अच्छे विचारों और भावनाओं में विष घोलती है, जो अपने आप को उससे अभिभूत होने देते हैं।

इन्हीं कारणों से, और केवल आदर्शवादी उद्देश्य से ही नहीं बल्कि निजी स्वार्थ

के स्पष्टतम और आग्रही उद्देश्यों से भी यह आवश्यक हो गया है कि अब पूर्वी और पश्चिमी जगत को अपने मतभेदों को युद्ध या युद्ध की धमकी से तय करने की कोशिश नहीं करनी चाहिएँ। अगर पूर्वी और पश्चिमी जगत दोनों इस निष्कर्ष के अनुकूल स्पष्ट और साधारण दलीलों की शक्ति स्वीकार कर सकते हैं तो फिर ऐसे और तरीकों को ढूँढ निकालना असम्भव नहीं रहेगा, जिनके द्वारा झगड़े वाले मामलों पर कुछ समझौता हो सके। अब तक समझौता होने में इसीलिए कठिनाइयां रही हैं कि दोनों गुटों में से किसी ने भी सच्चे मन से समझौता तब तक नहीं चाहा, जब तक कि उससे इसे कुछ राजनैतिक विजय प्राप्त नहीं हुई। लेकिन अगर दोनों प.त यह बात समझ लें कि राजनैतिक विजय के स्थान पर किसी समझौते पर पहुँच जाना महत्वपूर्ण है, तो शीघ्र ही यह पता चलेगा कि निष्पक्ष समझौता उतना कठिन तो नहीं जितना कि सोचा जाता है।

जिस दृष्टिकोण का सुझाव देने की कोशिश मैं कर रहा हूँ, उसी दृष्टिकोण की पैरवी करने वाले लोगों को यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिए कि यह ऐसा दृष्टिकोण है जो पश्चिमी जगत के ही विशेष हित में नहीं या पूर्वी के ही विशेष हित में नहीं। और इसका यह उद्देश्य भी नहीं कि यह किसी एक ओर को ऐसा लाभ पहुँचाना चाहे, जिसका संतुलन दूसरी ओर को प्राप्त होने वाले लाभ के बराबर न होता हो। दोनों गुटों को जो मूलभूत बात महसूस करनी चाहिए वह यह है कि झगड़े का जारी रहना दोनों को बरबाद करने वाला है और दोनों के मेल-मिलाप से उत्पन्न लाभ की मात्रा अपरिमित होगी।

अध्याय | चार

शांति के लिए क्या क़दम उठाये जाय

जो लोग नाभिकीय शस्त्रों की सम्भावनाओं में निहित ख़तरों को समझते-मानते हैं उन पर बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है। ख़तरे नए हैं और जिस प्रकार की विचार शैली से उनके बारे में विचार करना चाहिए वह भी नई ही होनी चाहिए। यदि नाभिकीय युग में मानव कुल को अपना अस्तित्व बनाये रखना है तो यह केवल व्यापक युद्धों की रोक-थाम से ही सम्भव होगा। इस लक्ष्य को प्राप्त करना मुश्किल है। और अगर पूर्वाग्रहों और जनता तथा राजनीतिज्ञों की मानसिक आदतों के बावजूद इस लक्ष्य को प्राप्त करना है तो इसकी ओर क्रमश: तथा विरोधी दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुए आगे बढ़ना होगा।

समस्या केवल उन तरीकों को ढूँढ लेने की नहीं, जिन को अमल में लाने से युद्ध को रोका जा सकेगा, बल्कि उन तरीकों को ढूँढने की है, जिनमें इस गुण के साथ-साथ यह गुण भी हो कि पूर्वी और पश्चिमी दोनों जगत की जनता और सरकारों को उनके समर्थन के लिए राज़ी किया जा सके। इन दोनों गुणों से युक्त तरीके इस प्रकार के होने चाहिए कि वे किसी एक पक्ष के लिए ही लाभदायक न हों और विभिन्न संलग्न राष्ट्रों के उन हितों की रक्षा कर सकें जिन्हें ये राष्ट्र अपने लिए परमावश्यक समझते हों।

स्थायी शांति तक पहुँचने के लिए कई अवस्थायें होंगी, जिनमें से प्रारम्भिक तो अपेक्षया आसान होंगी। पहला क़दम तो पूर्व और पश्चिम की सरकारों को इस

बात पर राज़ी करना होगा कि उनके उद्देश्य बड़े पैमाने पर होने वाले युद्ध से नहीं हासिल किये जा सकते। दूसरा क़दम पश्चिमी और पूर्वी जगत की सरकारों को इस बात पर राज़ी करना होगा कि उनके विरोधी भी इस सच्चाई को मानते हैं। अभी हाल के वर्षों में दोनों ओर के लोग एक दूसरे को समझौते की बातचीत के दौरान संदिग्ध दृष्टि से देखते रहे हैं और यह नहीं कहा जा सकता कि एक भी ओर के लोगों का यह संदेह निराधार रहा है। निस्संदेह, समझौते की बातचीत की सफलता के लिए केवल यही आवश्यक नहीं कि दोनों पक्ष निष्कपट हों, बल्कि दोनों को एक दूसरे की निष्कपटता में विश्वास होना चाहिए। यहाँ निष्कपटता शब्द की कुछ व्याख्या करने की आवश्यकता है। यह मानने की आवश्यकता नहीं कि एकाएक ही दोनों ओर के राजनयिक जिन शक्तियों का वे प्रतिनिधित्व करते हैं उनके हितों की ओर से उदासीन हो जायेंगे। यहां जिस प्रकार की निष्कपटता चाहिए वह बिलकुल दूसरे तरह की है। वह भावना इसी बात में है कि किसी न किसी समझौते पर पहुँच जाना चाहिए। यह उन प्रस्तावों को ढूँढने की कामना में नहीं, जिन्हें दूसरी ओर के लोग अमान्य कर देंगे; भले ही इससे बारे में ग़लत प्रचार ही क्यों न हों? यदि समझौते की बातचीत आवश्यक अर्थ में निष्कपट है, तो यह पहले से ही स्वीकार करना पड़ेगा कि दोनों में से किसी भी फ़रीक़ को कुछ हानि होने की कोई भी आशा नहीं होनी चाहिए। अगर दोनों पक्षों ने युद्ध का नीति के रूप में त्याग कर दिया है, तो यह स्पष्ट है कि बातचीत से जो भी क़रार हो, उसका स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिससे शक्ति संतुलन में कोई भी परिवर्तन न हो। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि दोनों ओर के लोग इस विश्वास को तिलांजलि दे दें कि शक्ति-संतुलन में परिवर्तन भी वाँछनीय हो सकता है। इस प्रश्न पर दोनों ओर के लोग विश्वास पर क़ायम रह सकते हैं, पर उन्हें सफलता प्राप्त करने के तरीक़ों को बदलना पड़ेगा। तरीक़े वही होने चाहिए जिन से लोकतंत्रीय देशों की दलगत राजनीति में काम लिया जाता है अर्थात् इनमें शांतिपूर्ण ढंग से अपनी बातें मनवाई जायेंगी; शस्त्रबल के द्वारा नहीं।

एक क़दम जो पहले ही एक सीमा तक उठाया जा चुका है वह है एक दूसरे

की निन्दा का त्याग। पश्चिमी जगत के लोग समझते हैं कि क्रेमलिन (रूस) दुष्ट है और पूर्वी जगत वाले समझते हैं वाल स्ट्रीट (अमेरिका) दुष्ट है। पहले दोनों में से कोई भी इस परस्पर निंदा-कर्म में जरा भी नहीं हिचकिचाता था। और अब भी इसमें सुधार की काफी गुंजाइश है। लेकिन समझौते की बातचीत की सफलता के लिए कुछ हद तक एक दूसरे के साथ शिष्टता का बरताव अत्यन्त आवश्यक है। इस के सिवा संभावित शत्रुओं की दुष्टता में विश्वास को आसानी से तिल का ताड़ बनाया जा सकता है और यह अतिनाटिकीय हो सकता है। यह याद रखना अच्छा ही होगा कि मनुष्य केवल राजनैतिक ही नहीं होते और यह भी कि राजनैतिक क्षेत्र के बाहर, शुद्ध मानवीय आशाओं और आशंकाओं तथा खुशियों और दुःखों की दृष्टि से पूर्वी और पश्चिमी जगत के बीच बहुत कम मुख्य मतभेद हैं। दोनों ओर के प्रचार-व्यूहों को घृणा फैलाने के स्थान पर सामान्य मानवता के प्रति जागरूकता फैलाना प्रारम्भ कर देना चाहिए। मैं यहाँ फिर कह दूं कि किसी न किसी हद तक यह सब हो रहा है, पर जितना चाहिए उस हद तक नहीं हो रहा है।

जिस मस्ले पर सरकारें पहले राज़ी हो सकती हैं वह है नाभिकीय शस्त्र-परीक्षणों का अन्त। यह बात व्यावहारिक राजनीति के क्षेत्र के भीतर ही है। और इस पर तुरन्त ही अमल किया जा सकता है। हालांकि यह पहला क़दम ही है, परन्तु यह बहुत महत्वपूर्ण है। पहली बात तो यह कि इससे फ़िलहाल मनुष्य निर्मित ज़हरों के क्षार का वर्षण बन्द हो जायगा, जिनसे पहले ही न जाने कितनी केन्सर सम्बन्धी और जेनेटिक (प्रजनन सम्बन्धी) हानियां हो चुकी हैं और जब तक परीक्षण जारी रहेंगे इस तरह की हानियाँ निरन्तर बढ़ी हुई तादाद में होती रहेंगी। इससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण कारण यह है कि परीक्षण बन्द करने के सामान्य क़रार से उन शक्तियों के पास तक नाभिकीय शस्त्रों का विस्तार नहीं हो पायगा, जिनके पास आज ये नहीं हैं। यह विस्तार आसन्न है और अगर ऐसा हो गया तो फिर इससे नाभिकीय युद्ध की आशंका बहुत बढ़ जायगी। परीक्षण-त्याग देने के समझौते का स्वागत करने का एक और भी कारण है। पूर्वी और पश्चिमी जगत में कोई भी क़रार किसी भी मस्ले पर हो, अच्छी बात ही है। निर-

स्त्रीकरण सम्मेलनों में जो लम्बी लज्जास्पद खींचातानियां हुई हैं उनसे शांति के मित्र निराशा के तट तक पहुँच चुके हैं, और अगर यह प्रमाणित हो जाय कि इस मस्ले पर समझौता संभव है तो इससे सबके मन में आशा का संचरण होगा।

मेरा विचार है दूसरा क़दम यह होना चाहिए कि अमेरिका और सोवियत रूस इस प्रकार की औपचारिक संयुक्त घोषणा करें कि वे अपने सब मतभेद युद्ध अथवा युद्ध की धमकी से नहीं बल्कि किसी दूसरे ढंग से तय करेंगे और इस घोषणा को अमल में लाने के लिए उन्हें एक ऐसा स्थायी संयुक्त-मंडल नियुक्त करना चाहिए जो वर्तमान शक्ति-संतुलन में कोई परिवर्तन किए बिना शान्ति की ओर उन्मुख उपायों को ढूँढे। मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं कि इस प्रकार के मंडल को निर्णयात्मक, अधिकार सौंपे जांय, कम से कम जब तक व्यवहार में इसकी क्रिया-विधि की परीक्षा न कर ली जाय तब तक तो कदापि नहीं। मैं केवल यह कह रहा हूँ कि इस प्रकार के मण्डल को जो भी झगड़ा उठ खड़ा हो उसका अध्ययन करने के लिए निमन्त्रित करना चाहिए और उसे ऐसे समझौते का सुझाव रखना चाहिए जिसे दोनों पक्ष स्वीकार करने के लिए तैयार हों। मेरा यह विचार नहीं कि इस प्रकार से निश्चित परिणामों पर शीघ्र ही पहुँचा जा सकता है, क्योंकि कोई भी विश्व व्यापी क़रार विश्व के कुछ हिस्सों में एक पक्ष के लिए अनुकूल होगा और दूसरे हिस्सों में दूसरे पक्ष के। इसलिए इसको एक अविभाज्य इकाई के रूप में समझना पड़ेगा, न कि अलग-अलग खण्डों के रूप में।

जिन प्रश्नों के बारे में बिर्णय लेना है वह दो प्रकार के हैं, हलांकि उन दोनों को बिल्कुल अलग भी नहीं किया जा सकता। निरस्त्रीकरण के प्रश्न भी हैं और क्षेत्र-सम्बन्धी प्रश्न भी। क्षेत्र-सम्बन्धी प्रश्नों के सम्बन्ध में, समझौते की बातचीत के दौरान में इस बात पर समझौता हो जाना चाहिए कि स्थिति को ज्यों की त्यों बनाये रखा जाय। परन्तु निरस्त्रीकरण के बारे में शीघ्र ही कार्रवाई करने की आवश्यकता है।

अनिश्चित युद्ध की वास्तविक आशंका के कारण ही निरस्त्रीकरण के प्रश्नों का महत्व बहुत अधिक है। तात्कालिक प्रत्याक्रमण के सिद्धांत ने—जिसकी घोषणा पश्चिमी जगत ने की है और जिसे शायद पूर्वी जगत ने भी स्वीकार कर

लिया है—विश्व को एक ऐसे भयंकर खतरे के सामने ला खड़ा किया है, जिसको राजनेता पर्याप्त रूप से स्वीकार नहीं करते अथवा जिसे जनता पर्याप्त रूप से समझती नहीं। दोनों ओर से यही घोषणा की जाती है कि उनमें से कोई भी बिना उकसाये गये नाभिकीय-आक्रमण नहीं करेगा, लेकिन किसी को भी यह विश्वास नहीं है कि दूसरा पक्ष भी इतनी शिष्टता दिखलायेगा। यह भी बात है कि कुछ दुर्घटनाओं को ग़लत ढंग से लेने पर उन्हें ही नाभिकीय-आक्रमण समझ लिया जा सकता है और ग़लती पता चलने से पहले ही प्रतिकार कार्रवाही अमल में आ जाय। अगर कई शक्तियों के पास नाभिकीय शस्त्र हों तो ख़तरा और भी अधिक बढ़ जायेगा। किसी छोटी शक्ति द्वारा किये गये आक्रमण को निश्चय ही किसी बड़ी शक्ति का आक्रमण समझ लिया जायगा। और इस कारण एक या दो घण्टे में ही बड़ा युद्ध छिड़ सकता है। इसलिए यह बहुत ज़रूरी है कि इस प्रकार के ख़तरों को टालने के लिए कुछ ज़रिये ढूँढ़े जाने चाहिए। जब तक दोनों पक्ष एक दूसरे की ओर से होने वाले किसी माने हुए आक्रमण को पूरी तरह विफल करने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं तब तक मेल-मिलाप का कोई भी उपाय किसी भी अंश तक सुरक्षा प्रदान नहीं कर सकता।

अध्याय | पांच

बातचीत से पहिले नए दृष्टिकोण की आवश्यकता

इस अध्याय का उद्देश्य यह नहीं है कि नाभिकीय युद्ध की आशंका को कम करने के सम्बन्ध में कुछ निश्चित उपाय सुझायें जायें। फ़िलहाल, मैं केवल एक ऐसे सामान्य दृष्टिकोण पर विचार करूंगा जिसे, बातचीत में सफलता प्राप्त करने के लिए, अपनाना दोनों पक्षों के लिए आवश्यक है। पहली आवश्यक बात तो यह है कि विश्व के सभी शक्तिशाली देशों में राष्ट्रीय हितों का नये सिरे-से निर्धारण किया जाय। शान्ति बनाये रखने के लिए जो उपाय सुझाये जायें, वे ऐसे हों कि उनसे सभी सम्बन्धित देशों के राष्ट्रीय हितों की अभिवृद्धि हो सके। नये निर्धारण का तात्पर्य सिर्फ़ तथ्यों की स्वीकृति है न कि तथ्यों में परिवर्तन। इसी के कारण यह आशा की जा सकती है कि सरकारों से की गयी अपील सफल होगी, क्योंकि दोनों पक्षों में से किसी को भी कोई व्यावहारिक चीज़ छोड़ने के लिए नहीं कहा जायगा।

अब तक शक्तिशाली देशों ने अपनी नीति में दो प्रकार के प्रयोजन रखे हैं। एक ओर तो उन्होंने अपने देशों को समृद्ध करने की कोशिश की है और दूसरी ओर उन्होंने दूसरे देशों पर राजनैतिक, आर्थिक या वैचारिक अधिकार प्राप्त करने की कोशिश की है। दूसरा लक्ष्य साधारणतया युद्ध के द्वारा प्राप्त किया जाता रहा है। वर्तमान स्थिति में नयी बात यह है कि अब युद्ध विदेशों पर अधिकार प्राप्त करने के लिए पहले के मुकाबले में कम लाभप्रद जरिया रह गया है। पहले की

तरह आज भी सरकारें अपने देशों की समृद्धि में वृद्धि कर सकती हैं, किन्तु कोई भी साम्राज्यवादी देश अब—उस प्रभुत्व को छोड़कर जो पहले से चला आ रहा है—दूसरे देशों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर के समृद्ध नहीं हो सकता। यदि किसी राजनेता के सामने अपने देश को सुरक्षित और समृद्ध करने करने का लक्ष्य है तो अब वह अपना यह लक्ष्य सभी शक्तिशाली देशों को सुरक्षित और समृद्ध बनाकर ही प्राप्त कर सकता है। इसका कारण कोई नई नैतिकता नहीं है। इसका एक मात्र कारण है वैज्ञानिक युद्ध की संभावनाएं। अगर आप रूसी हैं तो आप यह सोच सकते हैं कि अगर सब संसार कम्युनिस्ट होता तो कितना अच्छा था। अगर आप अमेरिका या पश्चिमी योरुप के किसी देश के निवासी हैं तो आप सोच सकते हैं कि अगर संसार आप के देश जैसी राजनैतिक और आर्थिक प्रणाली अपना ले तो कितना अच्छा हो। किसी से भी यह नहीं कहना चाहिए कि वह इन दोनों मतों में से किसी को त्याग दे, किन्तु जिस चीज़ को तिलांजलि देना आवश्यक है वह यह विश्वास है कि इन दोनों में से कोई भी चीज विश्वयुद्ध से प्राप्त की जा सकती है।

निश्चित रूप से मानवीय इतिहास में यह एक नई बात है। ईसाई धर्म और इस्लाम के मुल्कों के झगड़े में युद्ध से ही इस बात निर्णय हुआ था कि कौन से देश ईसाई होंगे और कौन से मुसलमान। प्रोटेस्टेंट और कैथॉलिकों के झगड़े में भी फ़ौजी सफलता और विफलता से ही समस्या का समाधान हो पाया था। उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका इसीलिए ईसाई हैं कि योरुपीय अस्त्रों में रेड-इण्डियनों के अस्त्रों से अधिक शक्ति थी। राजनेताओं और जन साधारण के दृष्टि-कोण में इस लम्बे इतिहास के प्रभाव इस प्रकार जम गये हैं कि आधुनिक विश्व में जिस नये ढंग से सोचने-विचारने की आवश्यकता है उस ढंग से सोचना बहुत कठिन हो गया है। अमेरिका, ब्रिटेन, रूस और चीन के मुख्य अधिकारियों ने पिछले दिनों यह विश्वास प्रकट किया है कि जिस आदर्श को वे स्वीकार करते हैं उसे विश्व व्यापक बनाया जा सकता है। ये घोषणायें पूर्णरूप से सच हैं या सिर्फ खेल के दौरान में दी जाने वाली भभकी हैं, यह जानना असम्भव है। सचाई चाहे कुछ भी हो, इस प्रकार की घोषणाएं बहुत खतरनाक हैं। अगर ये सिर्फ भभकी

हैं, तो यह डर है कहीं इस भभकी को परखने की चेष्टा न करली जाय

नाभिकीय युद्ध का परिणाम क्या होगा, इसके बारे में ठीक-ठीक जानना असम्भव है। कुछ लोग सोचते हैं कि संसार की जनसंख्या आधी रह जायेगी, कुछ का अनुमान है कि सिर्फ एक चौथाई आबादी रह जायेगी और कुछ सोचते हैं कोई भी नहीं बचेगा। नीति पर विचार करते समय इस प्रकार की सम्भावनाओं में से किसी के बारे में निर्णय कर लेना आवश्यक नहीं। पर यह निश्चित है कि नाभिकीय युद्ध के बाद संसार का जो स्वरूप होगा, वह ऐसा होगा जिसे न तो मॉस्को चाहता है और न वाशिंगटन। अधिकाँश लोगों की धारणा के अनुसार तब ऐसी बरबाद जनता होगी, जो भूख से पागल होगी, रोगों से कमजोर होगी, आधुनिक उद्योग और परिवहन के साधनों से वंचित होगी, शिक्षण संस्थाओं की मदद करने में असमर्थ होगी और जो निरन्तर बड़ी तेजी से अज्ञानी वहशी के स्तर की ओर बढ़ रही होगी। मैं फिर कहना चाहूँगा कि समस्त भविष्यवाणियों में, जिनमें कुछ सत्य भी हो, यही भविष्यवाणी सब से अधिक आशावादी है। किसी वर्तमान कालिक आदर्श की पैरवी करने वालों के लिए या किसी ज्ञानी व्यक्ति के लिए या जिसमें विवेक के कुछ भी मूल तत्व मौजूद हों उसे, इस भविष्यवाणी से कोई भी खुशी नहीं होगी। परन्तु जिस बात पर विभिन्न राज्यों के राष्ट्रीय हित एक से हैं—चाहे वे छोटी बातों पर कितना ही झगड़ते रहें—वह यही है : नाभिकीय युद्ध रोकना ही पड़ेगा।

इसमें किन्हीं राष्ट्रीय हितों की बलि देने की आवश्यकता नहीं। केवल उचित ढंग से यह समझना भर है कि उन हितों में क्या बात अन्तर्ग्रस्त है। मान लीजिए कि अगर आप पुराने ढंग से विचारते हैं और आप एक देशभक्त रूसी या देशभक्त बर्तानवी या देशभक्त अमेरिकी हैं तो आप के प्रयोजन दो प्रकार के होंगे। एक ओर तो आप इस प्रकार के आन्तरिक उपाय खोजेंगे जिनसे आपके अपने नागरिकों की खुशहाली बढ़े और दूसरी ओर आप दूसरे राष्ट्रों की खुशहाली को बलि चढ़ा कर अपने राष्ट्र की खुशहाली बढ़ाने के साधन ढूढेंगे। अब तक आपके लक्ष्यों के इस पूर्वार्द्ध को प्राप्त करने लिए मुख्यतः युद्ध का ही अनुसरण किया गया है, परन्तु अब इसका अनुसरण इस ढंग से नहीं किया जा सकता। मेरे कहने

का यह तात्पर्य कदापि नहीं कि इस ढंग का अनुसरण किया ही नहीं जा सकता। रूस को चेकोस्लोवाकिया के यूरेनियम से लाभ पहुँचता है और ब्रिटेन को पश्चिम एशिया के तेल से, परन्तु ये दोनों स्थितियां वर्तमान नाभिकीय गत्यवरोध से पहिले ही उत्पन्न हो चुकी थीं। पूर्वी या पश्चिमी गुटों में किसी एक के अधिक क्षेत्र का ऐसा विस्तार, जिसका प्रतिरोध युद्ध से किया जायेगा अब सम्भव नहीं है।

सीधे-सीधे ढंग से अगर देखें तो स्थिति यह है: हालांकि नाभिकीय युद्ध सभी के लिए बर्बादी का कारण होगा, लेकिन कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिन पर लोग लड़ाई करेंगे, भले ही उससे कोई लाभ न हो। इसलिए इस प्रकार के प्रश्नों से बचने का मार्ग खोजना पड़ेगा और यह तभी सम्भव है जब दोनों ओर के लोग वास्तव में और सच्चे मन से युद्ध के द्वारा सफलता की आशा त्याग दें। अब हम इस अमूर्त वक्तव्य को ठोस रूप देने की चेष्टा करें। कुछ प्रमुख रूसी यह विश्वास करते हैं या ऐसा कहते हैं कि यह उनका विश्वास है कि संयुक्त राज्य अमेरिका के सामान्य नागरिक वाल स्ट्रीट के अत्याचार से कराह रहे हैं और वे क्रेमलिन द्वारा प्रस्तावित 'स्वतन्त्रता' का उपभोग कर पाने का स्वागत करेंगे। अमेरिका में बहुत से लोग यह विश्वास करते हैं या ऐसा कहते हैं कि उनका यह विश्वास है कि रूस में सोवियत सरकार के प्रति घृणा है और बहुसंख्यक रूसी इसके विरुद्ध विद्रोह कर पाने के अवसर का स्वागत करेंगे। ऐसा न हो कि दोनों पक्षों का इस प्रकार का विश्वास नीति पर अपना प्रभाव डाल सके, क्योंकि दोनों में से प्रत्येक ओर अगर आवश्यकता पड़ी तो विरोधी विश्वासों का बल से प्रतिकार किया जायेगा। हो सकता है कि भविष्य में सर्वत्र साम्यवाद ही साम्यवाद हो। हो सकता है भविष्य में सर्वत्र अमेरिकी ढंग का जीवन हो और ऐसा भी हो सकता है कि इन दोनों में से कोई भी प्रणाली न हो। इन दोनों प्रणालियों के समर्थकों को अपने-अपने विश्वास को शान्तिपूर्ण प्रचार द्वारा प्रसारित करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। निस्सन्देह, ईसाई मिशनरी यह आशा करते हैं कि एक समय आएगा, जब पूरे विश्व में ईसाइयत फैल जायेगी, लेकिन उनमें से अधिकांश मिशनरी-प्रयासों की मदद के लिए अस्त्रबल का सहारा नहीं लेते। इसी तरह, पूर्वी प्रणाली या पश्चिमी प्रणाली के अनुयायियों को तब तक अपने-अपने मिशनरी-प्रयासों

में निर्बाध रूप से लगे रहने देना चाहिए जब तक वे सच्चे मन से विश्व-विजय को सैनिक उपायों से पाने की कामना नहीं करते। वर्तमान काल में पूर्वी जगत पश्चिमी जगत से डरता है और पश्चिमी पूर्वी से। प्रत्येक दशा में एक ओर के लोग दूसरी ओर के लोगों से इसलिए डरते हैं कि दोनों को यह डर रहता है कि दूसरे का लक्ष्य शस्त्रों के सहारे विश्व-विजय करना है, और यह डर पूर्णरूप से अकारण ही नहीं है। चूँकि आधुनिक शस्त्रों के कारण यह लक्ष्य प्राप्त करना असम्भव हो गया है, इसलिए अब समय आ गया है कि दोनों ओर के लोगों को इसे त्याग देना चाहिए और इतने विश्वास योग्य ढंग से छोड़ना चाहिए कि दोनों में से प्रत्येक को यह विश्वास हो कि दूसरे ने भी उसे छोड़ दिया है।

जहां तक इस विश्वास का सम्बन्ध है इसमें बहुत बड़ी प्रारम्भिक कठिनाइयां हैं। सन् १९४५ से अब तक सभी प्रकार की बातचीत निष्फल रही है। पारस्परिक विश्वास धीरे-धीरे तभी पैदा हो सकता है जब दोनों पक्ष इस प्रकार के उपाय करें जिनकी प्रेरणा उन्हें शान्ति की सच्ची कामना से मिली हो, विजय प्राप्त करने की इच्छा से नहीं। शायद, सच्चाई का सबसे पहिला प्रमाण यही दिया जा सकता है कि दोनों पक्ष गोपनीयता को तिलांजलि दे दें। यदि दोनों पक्ष एक दूसरे को अपने शस्त्रों का निरीक्षण करने दें, तो यह इस बात का काफ़ी हद तक विश्वसनीय प्रमाण होगा कि किसी का भी, मन ही मन, युद्ध का इरादा नहीं है। दूसरा काफ़ी हद तक विश्वसनीय प्रमाण जिसमें कठिनाई भी कम ही होगी, यह होगा कि इस तरह का समझौता हो जाये कि कठिन झगड़ों के समय तटस्थ देशों को पंच बनने के लिए निमंत्रित किया जाय। परन्तु ये तो प्रारम्भिक सुझाव हैं। मैं इनके बारे में आगामी अध्यायों में विस्तार पूर्वक लिखूंगा।

एक बहुत ही साधारण मामला है जिसमें बिना किसी बातचीत या औपचारिक समझौतों के ही स्थिति में सुधार सम्भव है। दोनों पक्ष के अधिकारियों को उसी प्रकार का औपचारिक शिष्टाचार फिर बरतना शुरू कर देना चाहिए जैसा कि सरकारें पहिले किया करती थीं और उन क़दमों के सम्बन्ध में जो देखने में मेल-मिलाप के अनुकूल दिखायी पड़ते हैं सार्वजनिक रूप से यह नहीं कहना चाहिए कि उनके पीछे बुरी नीयत है। पूर्वी और पश्चिमी जगत दोनों ही अपने को

उच्चकोटि की नैतिकता का परिपालक मानते रहे हैं और यह प्रवृत्ति समझौते की बात चलाने वालों को इतनी चिढ़ाने वाली लगती है कि उन्हें अपने को उसका तीखा उत्तर देने से रोक पाना सम्भव नहीं होता। और इसी से भयंकर परिणाम निकलता है। बहस के शिष्टाचार में ही यह बात सम्मिलित होनी चाहिए कि कोई भी आक्रमण की धमकियां या इस प्रकार का सुझाव नहीं देखा कि दूसरी ओर के लोग आक्रमण करने का विचार कर रहे हैं, या इसकी आशा है कि वे आक्रमण कर बैठेंगे। धमकियों से सिर्फ कटुता और क्रोध ही नहीं बढ़ता बल्कि अधिकारियों और जनता दोनों के पारस्परिक भय में निरन्तर पुनर्जाग्रति और बढ़ोतरी होती है। यह बहुत साधारण और प्रारम्भिक मामला है परन्तु मेरा विश्वास है कि अगर पूर्वी और पश्चिमी जगत के सरकारी प्रतिनिधिगण इसको स्वीकार कर लें तो फलदायक समझौते तक पहुँचने में बहुत अधिक आसानी हो जाएगी।

अध्याय | छह

निरस्त्रीकरण

बहुत से लोग यह समझते हैं कि सम्मत निरस्त्रीकरण या शस्त्रास्त्रों में कमी की समस्या अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण है और उसी को सबसे पहिले लेना चाहिए। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि शस्त्रास्त्र में सम्मत कमी को मैं भी बहुत महत्वपूर्ण समझता हूँ, और मैं सब प्रकार के नाभिकीय शस्त्रों पर पूर्ण प्रतिबन्ध का समर्थन करता हूँ। लेकिन इस मुख्य और प्रारम्भिक समस्या के सम्बन्ध में मुझे दो आपत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं। पहिली तो यह कि पिछले तेरह वर्षों के अनुभव ने यह प्रकट कर दिया है कि निरस्त्रीकरण सम्मेलनों में कोई भी समझौता तब तक नहीं हो सकता जब तक कि पूर्वी और पश्चिमी जगत के सम्बन्धों में जो तनाव रहा है उसमें कुछ कमी न हो। और दूसरी आपत्ति यह है कि नाभिकीय युद्ध के फलस्वरूप होने वाले मानव-वंश के विनाश से उसे बचाने की दीर्घकालीन समस्या का समाधान नाभिकीय शस्त्रास्त्रों को तिलांजलि देने मात्र से नहीं हो जायगा। इस से तो केवल इतना हो सकेगा कि विनाश कुछ समय के लिए स्थगित हो जाय। इन समझौतों से युद्ध अपने आप ही नहीं रुक जायेंगे और अगर कभी गम्भीर युद्ध छिड़ गया तो दोनों में से कोई भी अपने को पुराने समझौतों का पाबन्द नहीं समझेगा और इसकी पूरी आशंका है कि दोनों पक्ष नए उद्जन बमों के निर्माण में लग जायंगे। सुरक्षित शान्ति की ओर जाने वाले लम्बे मार्ग पर ये दोनों विचार दो भिन्न सिरों पर है। पहला राष्ट्रों को मार्ग पर चलना प्रारम्भ करने से

रोकता है और दूसरा लक्ष्य की ओर बहुत दूर तक जाने के बाद रास्ते से भटक जाने की संभावना प्रकट करता है। इन कारणों से मैं यह समझता हूँ कि समझौते से हुआ निरस्त्रीकरण समस्या की गुरुता को कम करने वाला है, समाधान नहीं है।

तो भी यह सच है कि निरस्त्रीकरण सम्बन्धी किसी मान्य उपाय का महत्व काफ़ी अधिक होगा। इसका पहिला और अत्यधिक महत्व तो इस प्रमाण में होगा कि पूर्वी और पश्चिमी जगत के बीच होने वाली बातचीत से इस प्रकार के उपाय उत्पन्न होंगे जिनका सभी विवेकशील व्यक्तियों को अवश्य स्वागत करना चाहिए।

दूसरा लाभ यह होगा कि अन-चाहे युद्ध का खतरा कम हो जायगा। वर्तमान काल में तुरन्त प्रतिकार की जो तैयारी है, उससे कभी-कभी बिल्कुल आयाचित दुर्भाग्यशील दुर्घटनायें घट जाती हैं, जैसे, उल्का-संसर्ग से हुए उद्जन बम-विस्फोट को ग़लती से शत्रु की कार्यवाही समझ लेना। यह ठीक ही मान लिया गया है कि यदि किसी बड़ी शक्ति ने नाभिकीय युद्ध चालू किया तो सबसे पहले वह शत्रु-सरकार की राजधानी को बरबाद करेगी। इससे यह भी समझ लिया जाता है कि अधीन कमांडरों को मुख्य कार्यालय से हुक्म आने की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए, बल्कि आपत्काल के लिए पहिले से ही तजवीज की हुई योजनाओं को क्रियान्वित करना चाहिए। उल्का से टकराहट के सिवा और भी कई प्रकार की संभावित बातें हो सकती हैं जिनसे ऐसा युद्ध छिड़ जाय जिसकी किसी बड़ी शक्ति ने इच्छा भी नहीं की थी। इस प्रकार के कारणों में से एक कारण तो यह हो सकता है कि राडार में कोई यांत्रिक दोष प्रकट हो जाय। दूसरा कारण यह हो सकता है कि किसी महत्वपूर्ण अफ़सर को भयानक उत्तरदायित्व के दबाव के कारण अचानक स्नायुविक दौरा पड़ जाय। तीसरा इससे भी अधिक खतरे का साधन तब हो सकता है जब बहुत से देशों के पास नाभिकीय शस्त्र हो जायं। फिर किसी भी ऐसे छोटे देश के लिए, जिसकी सरकार ग़ैर-जिम्मेदार, अन्ध-राष्ट्र-वादी हो, नाभिकीय आक्रमण करना सम्भव हो जायेगा और समझा यह जा सकता है कि इसके पीछे किसी बड़ी शक्ति का हाथ है। और ग़लती पता चलने से पहले ही विश्वयुद्ध छिड़ जायेगा। इन्हीं कारणों से विश्व की वर्तमान स्थिति में और इससे भी अधिक उस स्थिति में जो तब होगी जब बहुत से देशों के पास

उद्जन बम होंगे, कितने ही भयानक खतरे होंगे, जिन्हें निरस्त्रीकरण समझौतों से काफ़ी कम किया जा सकता है।

शस्त्रास्त्रों में कमी चाहने का तीसरा कारण मितव्ययता है। इस कारण की महत्ता बढ़ सकती है तथा आगामी कुछ वर्षों में और भी स्पष्ट हो सकती है। बढ़ते हुए खर्च के भय के कारण पश्चिम की सरकारों ने पिछले दिनों इस मत को स्वीकार कर लिया है कि सिर्फ नाभिकीय शस्त्र ही उचित बचाव कर सकते हैं। विशेषज्ञ इस दृष्टिकोण को इस आधार पर अनुदिन चुनौती दे रहे हैं कि अमेरिका को नाभिकीय-आक्रमण से असहनीय हानि होगी और इसलिए वह अपनी ओर से नाभिकीय युद्ध को उकसाने के लिए तैयार नहीं होगा। इसका मतलब यह है कि यदि पश्चिमी जगत में बिना किसी बर्बादी के पूर्वी जगत का प्रतिरोध करने की क्षमता है तो उसमें इतनी क्षमता भी होनी चाहिए कि वह अ-नाभिकीय युद्ध को चला सके, हालांकि इस क्षमता के लिए उसे अनापशनाप खर्च करना पड़ेगा। इस कुछ-कुछ तकनीकी कारण के सिवा, हमें यह मान लेना चाहिए कि जब तक शस्त्रों की होड़ जारी है और यह दोनों ओर के लिए जीवन-मरण का प्रश्न है तब तक नए आविष्कारों से सैनिक-व्यय निरन्तर बढ़ता ही रहेगा जब तक दोनों ओर के लोग निर्वाह-स्तर पर नहीं आ जाते। इससे बचाव तभी होगा जब दोनों ओर के लोग यह महसूस कर लें कि दूसरे देशों के नागरिकों को मौत के घाट उतार पाने योग्य बनने की अपेक्षा अपने देश के नागरिकों को समृद्ध बनाये रखना अधिक लाभदायक है।

निरस्त्रीकरण समझौतों से चौथा लाभ यह होगा कि उनसे इस बात की आवश्यकता स्पष्ट हो जायेगी कि झगड़ों का फ़ैसला युद्ध या युद्ध की धमकी से नहीं बल्कि पंचायती ढंग से या किसी अन्तर्राष्ट्रीय पंचाट से कराया जाय। इस प्रकार के किसी भी समझौते का लगभग यही अवश्यम्भावी विवेकपूर्ण परिणाम होगा। युद्ध द्वारा निर्णय करने में यह बात साफ है कि अगर जीत के लिए यह आवश्यक हुआ तो पूरे राज्य की ताकत लगानी पड़ेगी। इसके विपरीत निरस्त्रीकरण समझौते को जब तक माना जाय तब तक उसका तात्पर्य यही है कि सरकार युद्ध की तैयारी करने में पूरी शक्ति इस्तेमाल नहीं कर रही है। इससे अनि-

वार्यतः यही परिणाम निकलता है कि झगड़ों को तय करने के लिए नई पद्धतियां खोजनी ही चाहिएं।

यह बात मान लेते ही कि शस्त्रों में कमी होनी चाहिए, हमारे सामने एक साथ कई भीषण समस्यायें आ खड़ी होती हैं। निरस्त्रीकरण सम्मेलनों की कार्यवाहियों का अध्ययन करने के बाद यह लगभग असम्भव है कि पाठक औपचारिकता के दलदल में फंसे बिना रह जाय : इस या उस पक्ष की दलीलें और इस पक्ष की युक्तियुक्त आपत्तियों का उस पक्ष से वैसा ही युक्तियुक्त उत्तर। मेरा विचार है कि जब तक पूर्व पश्चिम का तनाव जैसा अब तक रहा वैसा ही बना रहेगा तब तक हम इस दलदल में फंसने से नहीं बच सकते। मान लीजिए, पूर्वी जगत सभी प्रकार के नाभिकीय शस्त्रों के उन्मूलन के लिए राज़ी हो जाता है, तो पश्चिमी जगत तुरन्त प्रत्युत्तर में यह कहेगा कि पूर्वी जगत की मानव-शक्ति उससे कहीं अधिक है और इससे वह तब तक अनुचित लाभपूर्ण स्थिति में रहेगा जब तक साथ ही साथ पारम्परिक शस्त्रों में कमी नहीं की जाती। मान लीजिए, यह बात स्वीकार कर ली गई। दूसरा प्रश्न यह उठ खड़ा होगा कि पूर्वी और पश्चिमी जगत में पारम्परिक शस्त्रों की निश्चित संख्या क्या हो? मान लीजिए, यह प्रश्न भी तय हो गया ; तो एक तीसरा और सबसे कठिन प्रश्न उठ खड़ा होगा : निरीक्षण के ऐसे कौन से उपाय किये जायेंगे जिनसे यह निश्चिन्तता रहे कि समझौते का पालन ईमानदारी से हो रहा है? अब तक यह देखा गया कि इस प्रकार के प्रश्न द्रौपदी के चीर की तरह बढ़ाये जा सकते हैं और वार्ता करने वाले कई वर्षों तक निरस्त्रीकरण की वकालत के सम्बन्ध में होने वाली बातचीत को वास्तविक रूप में निरस्त्रीकरण किए बिना जारी रख सकते हैं। निरस्त्रीकरण सम्बन्धी बातचीत तभी सफल हो सकती है जब कि दोनों ओर के लोगों को इस बात का विश्वास दिला दिया जाय कि दूसरी ओर के लोगों ने जीत की आशा को तिलांजलि दे दी है।

यह सच है कि एक उपाय व्यावहारिक राजनीति के क्षेत्र में ही विद्यमान है और वह है : नाभिकीय-परीक्षणों का उन्मूलन। चौथे अध्याय में जो लिखा है उसे यहाँ दुहरा दें। यह उपाय पहले से ही इसलिए संभव है क्योंकि वैज्ञानिक इस विश्वास

पर एकमत हैं कि किसी गम्भीर नाभिकीय-परीक्षण को गुप्त नहीं रखा जा सकता। निरीक्षण की प्रणाली से कुछ विशेष अन्तर नहीं पड़ेगा, इसलिए दोनों में से कोई भी इस पर आपत्ति नहीं करता। परीक्षणों को बन्द करना केवल छोटा-सा क़दम है, लेकिन फिर भी अगर ऐसा हो जाय तो यह स्वागत योग्य होगा। इसके स्वागत योग्य होने का पहला कारण तो यह कि इसके कारण वायु, जल और भोजन में रेडियमधर्मी तत्वों के फैलाव का आयाम कम हो जायगा। इसके कारण आज विशाल पैमाने पर कैंसर और ल्यूकेमिया में बढ़ोतरी हो रही है और जेनेटिक (प्रजनन सम्बन्धी) हानियां भयंकर रूप से बढ़ती जा रही है। दूसरे, यह इसलिए स्वागत योग्य होगा क्योंकि पूर्वी और पश्चिमी जगत के बीच कोई भी समझौता अच्छा ही होगा और तनाव कम करने वाला होगा। तीसरे, यह इसलिए भी स्वागत योग्य होगा क्योंकि इसके बाद नई शक्तियों के लिए "नाभिकीय क्लब" का सदस्य बन पाना बहुत कठिन हो जायगा। इन कारणों से हमें यह हार्दिक आशा करनी चाहिए कि परीक्षणों का उन्मूलन करने वाला समझौता हो ही जायगा।

निरस्त्रीकरण के सम्बन्ध में सरकार की किसी वास्तविक कामना के सिवा सबसे बड़ी कठिनाई तो निरीक्षण के प्रश्न से सम्बन्धित है। इस पर एक प्रशंसनीय पुस्तक भी है : **इन्सपेक्शन फ़ॉर डिजआर्मामेंट** (निरस्त्रीकरण के लिए निरीक्षण)। इस पुस्तक का सम्पादन सेम्यूर मैलमेन ने किया है और इसे सन् १९५८ में न्यूयार्क के कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस ने प्रकाशित किया था। जहां तक मैं निर्णय कर सका हूँ इस पुस्तक में की गई जांच-पड़ताल पूर्ण रूप से ईमानदार है और इसका लक्ष्य तथ्यों और संभावनाओं का न्यायपूर्ण अनुमान लगाना है। मोटे तौर पर कहें तो इस पुस्तक का सार यह है कि, निरीक्षण से नए नाभिकीय शस्त्रों का बनना बन्द हो सकता है। लेकिन इससे किसी बेईमान सरकार को इस बात से नहीं रोका जा सकता कि समझौता होने के समय वर्तमान स्टॉक का कुछ परिभाग छिपा न ले। जर्मन सरकार ने पहिले विश्व युद्ध के बाद किस प्रकार वर्साई की सन्धि को भंग करके बनाये हुए शस्त्रों को छिपा लिया, इसका मूल्यवान विवरण हमें प्राप्त ही है। इस सन्दर्भ में उस सन्धि के निरस्त्रीकरण से सम्बन्धित धाराओं में जर्मन सरकार की सहमति स्वेच्छाकृत नहीं बल्कि पराजय के कारण अनचाही

सहमति थी। मेरा विचार है कि इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि जब तक समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले सभी देश ईमानदारी से इस बात से सन्तुष्ट नहीं कि यह समझौता सिर्फ उनके शत्रुओं के ही हित में नहीं बल्कि उनके हित में भी है तब तक कोई भी निरस्त्रीकरण समझौता विश्वास योग्य नहीं होगा। इससे हमारी पहिले कही हुई बात और पक्की होती है कि निरस्त्रीकरण पूर्वी और पश्चिमी जगत के सुधरे हुए सम्बन्धों का परिणाम होना चाहिए। यह अपने आप में इस प्रकार के बेहतर सम्बन्धों का कारण नहीं बन सकता।

दोनों ओर यदि शान्ति की हार्दिक कामना हो तो इस बात पर बिना कुछ देर किए ही रजामन्द होना संभव है कि नए नाभिकीय शस्त्रास्त्र बिल्कुल न बनाये जायें। यह ऐसा उपाय है जिसे बिना किसी अधिक कठिनाई के निरीक्षण द्वारा लागू किया जा सकता है, विशेषकर हवाई निरीक्षण से साइबेरिया या अलास्का के सुदूरवर्ती गहन इलाक़ों में भी बड़े कारखानों का छिपाना असंभव हो जायगा। इसके बाद उद्जन बमों के वर्तमान स्टॉक को नष्ट कर देना चाहिए। किन्तु ऐसा करने में बड़ी कठिनाइयाँ हैं। और अगर बिना शक्ति-संतुलन को बदले ऐसा किया जाना है, तो इसके साथ ही पारम्परिक फ़ौजों में भी कमी करनी पड़ेगी। मुझे इस बात में सन्देह है कि दोनों ओर युद्ध को नीति-साधन के रूप में त्यागने की सच्ची तत्परता के बिना ऐसा कोई समझौता किया जा सकता है।

अन्त में कुछ शब्द मैं उस सामान्य ख़ुशहाली की बाबत कहना चाहूँगा जो तब बढ़ेगी जबकि निरस्त्रीकरण के सम्बन्ध में इस प्रकार के उपाय किए जायेंगे जिनके बारे में हमने अब तक चर्चा की है। जिन लाभों की आशा है उनमें सबसे पहले मैं उस भय के भयानक बोझ के निराकरण को, जो वर्तमान काल में उन सब पर छाया हुआ है, जो उस खतरे से परिचित हैं जो मानव जाति के सामने मुँह बाये खड़ा हैं, रखता हूँ। मेरा विश्वास है कि समूचे सभ्य संसार में आनन्द का महान स्रोत उमड़ पड़ेगा और ऊर्जा का वह महान भण्डार जो आज घृणा, बरबादी और बेकार प्रतिद्वन्द्विता की ओर उन्मुख है रचनात्मक दिशाओं की ओर मोड़ दिया जायगा, जिससे विश्व के उन अभागों में जो दीर्घकाल से निर्धनता और अत्यधिक श्रम से पीड़ित रहे हैं, आनन्द और समृद्धि छा जायेगी। मेरा विश्वास

है कि परोपकार, उदारता और सहानुभूति के उन भावों को, जो आज इस डर से कि शत्रुगण क्या करदें, लौह शृंखलाओं में बंधे हुए हैं, एक नया जीवन और एक नई शक्ति और मानव व्यवहार में एक नया साम्राज्य मिल जायगा । यह सब संभव है । बस,आवश्यकता इस बात की है कि मानव अपने को उस अनावश्यक भय के प्रभुत्व से मुक्त करके एक नई स्वाधीनता और आशा के जीवन को अपनाने का अवसर दे, जिससे आज वह विलग है।

अध्याय | सात

मेल-मिलाप के लिए क्या कदम उठाये जायं

आइये, हम यह मान लें कि ऐसी स्थिति आ गई है जब पूर्वी और पश्चिमी जगत इस बात पर विश्वास करने लगे हैं कि नाभिकीय युद्ध सब पार्टियों के लिए भीषण विपत्ति होगा। और अगर शांति बनाये रखने के लिए उठाये गये क़दम संभव हों तो उन्हें सभी अत्यन्त पसन्द करेंगे। शांतिपूर्ण नीति के मार्ग में अनेक प्रकार की रुकावटें हैं। सबसे पहली और सबसे गम्भीर रुकावट है पारस्परिक भय, और दूसरी ओर के लोगों की तरफ से अविश्वासी रहने की शंका। दूसरी रुकावट है प्रतिष्ठा खोने का भय। दोनों पक्षों में से कोई भी यह बरदाश्त नहीं कर सकता कि ऐसा लगे मानों उन्होंने विवश होकर प्रतिपक्षी को कुछ रियायतें दी हैं। तीसरी कठिनाई सैद्धांतिक मतभेद है, जिसपर काफी जोर दिया जाता है, पर जो मुझे पहली दो कठिनाइयों जितनी गम्भीर नहीं लगती। दोनों ओर के बहुत से लोग यह विश्वास करते हैं कि उनकी ओर के लोग जिस जीवन प्रणाली के समर्थक हैं वह दूसरी से बेहतर है, इसलिए ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए जिससे दूसरी प्रणाली को समूचे विश्व में सफलता मिल जाय। मेरा विचार है कि अगर शक्तिशालियों का समर्थन प्राप्त करना है तो मेल-मिलाप की नीति का अनुसरण करते समय इन कठिनाइयों को ध्यान में अवश्य रखना चाहिये और इस प्रकार के उपाय करने चाहिए, जिनसे ये कठिनाइयां कम से कम की जा सकें। मैं यह नहीं कह सकता कि इस प्रकार के उपाय अपनाये जायेंगे या नहीं और अगर वे अपनाये भी

जायेंगे तो उनका रूप क्या होगा ? आगे मैं उन सुझावों को पाठकों के सामने रखूँगा जो मेल-मिलाप के सम्भावित मार्ग का अंग हो सकते हैं। लेकिन अगर इसी प्रयोजन को ध्यान में रखकर किए गये दूसरे उपाय ज्यादा पंसद किये गये तो मैं अपने बताये इन्हीं उपायों को अमल में लाने का इसरार नहीं करूँगा।

मेरे विचार से पहला क़दम यह होना चाहिए कि दोनों गुटों में सम्मिलित देश और जो भी दूसरे देश चाहें यह आधिकारिक घोषणा करें कि युद्ध से किसी भी हस्ताक्षर कर्त्ता राज्य के प्रयोजन पूरे नहीं होंगे और इसलिए इसकी रोकथाम के लिए शीघ्र ही उपाय किये जाने चाहिए। इसके साथ ही साथ या इसके तुरन्त बाद एक ऐसा यथास्थिति क़रार होना चाहिए, जिसके अनुसार एक निश्चित कालावधि के दौरान, किसी भी ओर की शक्ति इस यथास्थिति को बदलने की कोशिश नहीं करेगी या कोई उत्तेजनात्मक कार्रवाही नहीं करेगी।

दूसरा क़दम होना चाहिए, मेल-मिलाप समिति की नियुक्ति। इस समिति को कोई सत्ता नहीं होगी। इसका काम तो तनाव को कम करने के उपाय ढूँढ निकालना होगा। मेरा विचार है कि प्रभावक ढंग से मंत्रणा कार्य कर पाने के लिए यह आवश्यक है कि यह समिति छोटी ही हो। मेरा सुझाव है कि इस समिति के सदस्यों में दो प्रतिनिधि अमेरिका के हों, दो रूसियों के हों, एक पश्चिमी योरुप से हो, एक चीनी, और दो प्रतिनिधि तटस्थ देशों से हों। लाभदायक यही होगा कि दो तटस्थ प्रतिनिधियों में से एक भारतीय हो और एक स्वीडन वासी—कुल मिलाकर इससे यह सुनिश्चित रहेगा कि यदि एक पूर्वी जगत के अनुकूल रहेगा तो दूसरा पश्चिमी जगत के। यह आवश्यक होगा कि इस समिति के सदस्य अपनी-अपनी सरकारों के विश्वासपात्र हों, क्योंकि अगर ऐसा नहीं होगा तो उनकी सिफ़ारिशों का कोई मूल्य नहीं होगा। मन्त्रणा काल के दौरान में उन पर कोई और कार्यभार नहीं होना चाहिए क्योंकि यह अवधि कुछ कम नहीं होगी। आधुनिक विश्व की कठिनाइयों में से एक कठिनाई यह भी है कि नीति विधायक इतने अधिक व्यस्त रहते हैं कि वे जिन तथ्यों के आधार पर नीति बनाई जानी चाहिए उनके कुछ से अधिक भाग से ही अपने को अवगत करा पाते हैं। मेल-मिलाप समिति भी इस कमी का शिकार न हो जाय इसके लिए

इस समिति के सदस्यों पर न तो कोई प्रशासनिक कार्यभार रहना चाहिए और न जनमत का दिन प्रतिदिन का भार। इन्हें दोनों से ही मुक्त रखना चाहिए। अच्छा तो यह होगा कि समिति के सभी सदस्य रोज़ एक दूसरे से कार्य-सम्बन्धी सम्पर्क ही नहीं बल्कि सामाजिक सम्पर्क भी रखें। यदि तनाव की किसी कालावधि में तीन पश्चिमीय जगत वाले सदस्यों और तीन पूर्वीय जगत वाले सदस्यों में इतने गम्भीर मतभेद हों कि वाद-विवाद और सामाजिक सम्बन्धों को बनाये रखना कठिन हो जाय तो तटस्थ देशों के दोनों प्रतिनिधियों का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे इस तनाव को कम करने के उपाय करें और दोनों गुटों के प्रतिनिधियों को सहनशीलता की स्थिति में ले आयें। यह बात प्रारम्भ से ही समझ लेना चाहिए कि समिति के प्रत्येक सदस्य को समझौता करने की चेष्टा करनी चाहिए न कि राजनयिक विजय की।

सफलता की सबसे मुख्य शर्त यही है कि वाद-विवाद गुप्त हों और सभी सदस्यों की सहमति के बिना कुछ भी प्रकाशित न किया जाय। अगर इस शर्त का पालन नहीं किया गया तो बहस के दौरान किसी भी सदस्य के लिए ऐसी प्रयोगात्मक रियायत देना असम्भव हो जाएगा, जिसे बहस के आगामी दौर में देना असामयिक हो। इससे किसी भी सदस्य के लिए इस प्रकार की राय प्रकट करना या ऐसी आलंकारिक बातें करना जिनसे उस देश में जहां का वह प्रतिनिधि है उसे वाहवाही मिल सके बहुत कठिन हो जायगा। लेकिन मेरा विचार है कि अगर कोई सर्वसम्मत निर्णय हो सकें, तो उन को सभी सम्बन्धित देशों में व्यापकतम रूप से प्रकाशित-प्रचारित करना चाहिए।

किन्हीं भी मान्य समझौतों के लिए शर्त के रूप में कुछ सिद्धांत बनाने पड़ेंगे। इनमें प्रथम और अत्यन्त आवश्यक यह है कि कुल मिलाकर मेल-मिलाप के उपायों से किसी भी ओर को निवल लाभ न हो। यह शर्त इसीलिए अत्यन्त आवश्यक है कि कहीं कोई भी पक्ष मेल-मिलाप के सुझाये गये उपायों से युद्ध करने के लिए न ललचा उठे। मुझे भय है कि ऐसा प्रस्ताव जो इस शर्त को वास्तविक रूप से पूरा करता हो, दोनों को कहीं ऐसा न लगे कि जैसे दूसरी ओर को कुछ बहुत अधिक दे दिया गया है। दोनों तटस्थ सदस्यों का यह कार्य होगा कि पहले

वे स्वयं इस बात पर संतुष्ट हों कि दोनों पक्षों को दी गई रियायतों में एक सन्तुलन है और इस पर सन्तुष्ट होने के बाद ही वे दूसरे सदस्यों को इस बाबत समझाना शुरू करें।

समिति की मन्त्रणा का दूसरा सिद्धांत यह होना चाहिए कि कठिन क्षेत्रों में जो मतभेद हैं उन्हें किन उपायों से कम किया जाय। नियमतः इसका तात्पर्य यही है कि कोई ऐसा निर्णय लिया जाय जिसे लागू करने के लिए दोनों ओर के देश राज़ी हों और ऐसी स्थिति में यह निर्णय व्यवहारतः अपरिवर्तनीय हो जायगा। विभिन्न क्षेत्रों में जो मतभेद उत्पन्न हो जाते हैं उन्हें पूर्वी और पश्चिमी जगत में अनिश्चितता और प्रतिद्वन्द्विता के कारण प्रोत्साहन मिलता है। अगर इन्हें दूर कर दिया जाय तो इस प्रकार के क्षेत्रों में वर्तमान काल के अधिकांश खतरे अन्तर्धान हो जायं।

तीसरा सिद्धांत, जो दूसरे दो सिद्धांतों के अधीन होगा, यह है कि जहां भी सम्भव हो उस क्षेत्र के निवासियों की इच्छा का आदर करना चाहिए। इसे कई कारणों से पूर्ण सिद्धांत के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। एक अजीबो-गरीब उदाहरण लीजिए: यदि पनामा में कम्युनिस्टों का बहुमत हो तो ऐसी आशा कौन करेगा कि संयुक्त राज्य अमेरिका मॉस्को के मित्रों को अर्थात् पनामा के कम्युनिस्टों को पनामा नहर समर्पित कर दे—मैं इससे कम अजीबोगरीब उदाहरण इस डर से नहीं दूंगा कि कहीं विवादी-प्रमाद न भड़क उठें।

मैं आशा करता हूँ कि उचित काल तक बहस कर लेने के बाद मेल-मिलाप समिति समझौते का ऐसा प्रारूप उपस्थित करेगी, जिसमें उन सब मुख्य बातों का उल्लेख होगा जिनके सम्बन्ध में पूर्वी और पश्चिमी जगत में झगड़ा समझा जाता है। मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं कि कोई भी सरकार पहले से इस बात पर सहमति प्रगट करे कि वह मेल-मिलाप समिति के प्रस्तावों को स्वीकार कर लेगी, लेकिन ऐसा मेरा विश्वास और आशा है कि व्यापक पैमाने पर प्रचारित किए जाने के बाद उनके प्रस्ताव उस नाभिक का स्थान ग्रहण कर लेंगे जिसके ओर पास कुछ विवेकपूर्ण मत शीघ्र ही मूर्त्त स्वरूप ग्रहण कर लेंगे। निष्पक्षता उनके प्रस्ताव का गुण होगी और दूसरी खूबी होगी इस प्रकार की उत्कृष्ट शर्तें, जिनकी

आशा कोई भी सरकार कर सकती है। इस तथ्य का कि प्रस्तावित समझौते को पूर्वी और पश्चिमी दोनों जगत के प्रतिनिधियों का अनुमोदन मिल चुका है, जनमत पर आवश्यक रूप से गहरा प्रभाव पड़ेगा। और इससे शांति के मित्रों को ऐसी नीति मिल जायगी जिस पर यह शंका नहीं की जा सकेगी कि यह अनुचित रूप से किसी पक्ष का समर्थन करती है।

बहुत से लोग संदेह करेंगे कि जिस प्रकार की समिति का सुझाव मैं दे रहा हूँ वह किसी समझौते पर पहुँच भी पायेगी अथवा नहीं। कहा जायेगा कि पूर्वी और पश्चिमी जगत के बीच की खाई इतनी चौड़ी है कि बहस से पाटी नहीं जा सकती। और अगर समिति ने समझौते की कुछ सूरत निकाल भी ली तो दोनों ओर की राष्ट्रीय सरकारें यह कह कर उसे भंग कर देंगी कि उसमें तो दूसरी ओर के पक्ष को असहनीय रियायतें दे दी गई हैं। मेरा विचार है कि अगर नाभिकीय युद्ध के खतरों को भली प्रकार समझ लिया गया है, तो ऐसी बात नहीं होगी। जब दोनों पक्ष यह महसूस कर लेंगे कि दोनों के सामने एक ही खतरा है तो ऐसी स्थिति में बहुधा कल्पनातीत सरलता से समझौता हो जाता है। इसे स्पष्ट करने के लिए मैं पचास वर्ष से कुछ समय पहिले हुई एक घटना का उल्लेख करूंगा। क्रीमियाई युद्ध के समय से ही ब्रिटेन और रूस एक दूसरे से घृणा करते थे और डरते थे। लेकिन पारस्परिक शंका के पचास वर्षों से कुछ अधिक समय के बाद वे इस परिणाम पर पहुँचे कि उन्हें एक दूसरे से इतना डर नहीं जितना कि जर्मनी से है। और सन् १९०७ ई० में उन्होंने एक समाहित संधि की, जिसके द्वारा उनकी नीतियों में जो विभिन्नता थी वह भी समाप्त हो गई। यह सन्धि जर्मनी से दोनों के सामान्य भय के कारण हुई—यह भय नाभिकीय युद्ध के भय से कहीं कम भयानक था। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि नाभिकीय युद्ध के भय को राष्ट्रगत दृष्टि से लिया जाता है, मानव समाज की दृष्टि से नहीं। पूर्वी जगत पश्चिमी जगत के शस्त्रास्त्रों से डरता है, पश्चिमी जगत पूर्वी जगत के शस्त्रास्त्रों से। सच तो यह है कि पूर्वी और पश्चिमी दोनों जगतों के शस्त्रास्त्र पश्चिमी और पूर्वी जगतों को समान रूप से आतंकित करते हैं। जो व्यक्ति विदेश मंत्रालयों की राष्ट्रीय आकांक्षाओं के खब्त से पीड़ित नहीं और जिसके

पास मस्ले पर विचार करने का समय है उसे यह बात बिल्कुल स्पष्ट लगेगी। अगर पूर्वी और पश्चिमी जगत के राजनेता यह बात समझ लें तो जिन मतभेदों के कारण दोनों गुट्टों में विरोध है वह उन मतभेदों से अधिक और कुछ नहीं लगेंगे जिनके कारण सन् १९०७ ई० के पहले ब्रिटेन और रूस एक दूसरे के विरोधी थे। इन कारणों से, मुझे यह आशा बिल्कुल नहीं है कि जिस प्रकार की मेल-मिलाप मंत्रणा का मैंने सुझाव दिया है वह असफल रहेगी।

अध्याय

आठ

क्षेत्रीय सामंजस्य

पिछले अध्याय में जिस मेल-मिलाप समिति का ज़िक्र मैंने किया है उसके सबसे कठिन कर्तव्यों में से एक कर्तव्य शांति के हित में आवश्यक समझे जाने वाले क्षेत्रीय परिवर्तनों का सुझाव देना होगा। यह पहले से ही नहीं जाना जा सकता कि इस ढंग से क्या सम्भव होगा। जो कुछ भी कहा जाय वह प्रयोगात्मक हो और जब व्यावहारिक बातचीत की जाय तो उसमें आमूल चूल परिवर्तन भी किये जा सकते हैं। लेकिन इन अनिश्चितताओं के बावजूद एक ऐसा मसौदा बना लेना श्रेयस्कर होगा, जो शांति के मित्रों की अभिलाषा हो। सबसे मुख्य सम्बन्धित प्रश्नों को तीन शीर्षकों में बाँटा जा सकता है। योरुप, पश्चिमी एशिया और दूर पूर्व।

१. **योरुप**। वर्तमान में योरुप पूर्ण रूप से युद्ध के भय से आक्रांत है। पश्चिमी योरुप में अमेरिका की फ़ौजें पड़ी हैं और रूस पर नाभिकीय आक्रमण की तैयारियाँ हैं। हमें यह आश्वासन है कि पश्चिमी जगत आक्रमण का आरंभ नहीं करेगा, लेकिन अगर रूस ने परम्परागत शस्त्रों से भी हमला किया तो पश्चिमी जगत नाभिकीय शस्त्रों से प्रतिकार करेगा। दूसरी ओर रूस ने पूर्वी योरुप में कई पिछलग्गू राज्यों में साम्यवादी सरकारें स्थापित कर ली हैं, जिन में से कुछ में वे लोग बहुसंख्या में हैं जो साम्यवाद के कट्टर विरोधी हैं। इन पिछलग्गू राष्ट्रों में रूस ने जो सरकारें स्थापित की हैं उन्हें रूसी फ़ौजों के बूते

पर सत्तारूढ़ रखा जाता है। इस प्रकार वास्तव में योरुप अमेरिका और रूस के बीच बँटा हुआ है। पश्चिमी भाग अमेरिका का और पूर्वी भाग रूस का। स्थायी शांति की आशा करने से पहले यह आवश्यक है कि रूस और अमेरिका के बीच कोई तटस्थ रोक रखने और मध्य भाग में अवस्थित देशों को क्रियात्मक स्वाधीनता फिर प्राप्त कराने के लिए बहुत ही सारवान उपायों का अवलम्बन करना चाहिए।

इस परिणाम को प्राप्त करने के लिए एक बहुत ही साधारण उपाय है कि पूर्वी या पश्चिमी योरुप में कोई भी प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य अपने क्षेत्र में विदेशी फ़ौजें न रखे। इसके लिए अमेरिका और रूस दोनों को ही भारी त्याग करना पड़ेगा। अभी अमेरिका के पास वे साधन नहीं जिनसे वह अपने यहां से रूस में उद्जन बमों को बरसा सके, लेकिन ऐसे साधन इस रूप में उसके पास हैं कि पश्चिमी योरुप के, जिसमें ब्रिटेन भी सम्मिलित है, किसी भी भाग से वह रूस पर उद्जन बम बरसा सकता है। यदि योरुप में अमेरिकी हथियारबन्द फ़ौज को टिकने की आज्ञा न हो तो अमेरिका के पास उद्जन बम से आक्रमण करने की शक्ति नहीं रहेगी। फ़ौजी दृष्टि से लें तो यह गम्भीर हानि होगी।

लेकिन इस प्रकार के समझौते से रूस को भी तो हानि होगी। और मेरा विचार है कि उसकी हानि भी उतनी ही बड़ी होगी जितनी कि अमेरिका की। अगर रूसी शस्त्रास्त्रों का कोई भय नहीं होता तो निश्चय ही हंगेरी और पूर्वी जर्मनी और सम्भवतः पोलैण्ड साम्यवाद को तिलांजलि देकर किसी न किसी प्रकार के संसदीय समाजवाद को अपना लेते। वास्तव में, यह उसी दशा में हो सकता था जब रूसी आक्रमण से डरने का कोई गम्भीर कारण न होता। इसलिए केवल यही आवश्यक नहीं कि योरुप के देशों को विदेशी फ़ौजों से मुक्त कराया जाय, बल्कि उनकी मुक्ति की गारंटो भी होनी चाहिए। अच्छा हो यह होगा कि राइन से लेकर विस्चुएला तक समूचे मध्य योरुप को तटस्थ क्षेत्र बना दिया जाय और इन तटस्थ राज्यों को बहुत ही कम संख्या में फ़ौजें रखने की अनुमति दी जाय। रूस, जर्मन पुनश्शस्त्रीकरण से कुछ अधिक भयभीत है और यह बात कुछ अप्राकृतिक नहीं। दो विश्व युद्धों में रूस को जो अनुभव हुए हैं, उनको दृष्टि में रखते

हुए निश्चय ही यह कुछ आश्चर्यजनक नहीं। दूसरी ओर, जर्मनी से यह आशा करना कि वह स्वेच्छा से पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी के बँटवारे को स्वीकार कर लेगा उचित नहीं। जब तक जर्मनी का एकीकरण नहीं होता तब तक योरुप में सुरक्षित शान्ति नहीं हो सकती। परन्तु इसके साथ ही इस प्रकार का समझौता अवश्य होना चाहिए, जिससे जर्मन शस्त्रास्त्रों की संख्या निश्चित हो जाय; नहीं तो रूस इसे अपने लिए खतरे की घंटी समझेगा।

दो ऐसे सामान्य सिद्धांत हैं जिनका अनुसरण योरुप में किसी भी प्रकार के समझौते के समय करना चाहिए। पहिला तो यह कि झगड़े के सभी सम्भावित कारणों को कम किया जाय और दूसरा यह कि प्रत्येक देश को इस बात का निर्णय करने की अनुमति हो कि उसके यहां कैसी राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था हो? केवल हथियारों की सीमा निर्धारित करने के सिवा किसी भी प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य के आन्तरिक मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। यदि कोई राज्य साम्यवाद को अच्छा समझता है तो पश्चिमी जगत कोई आपत्ति न करे, और अगर वह संसदीय लोकतंत्र चाहे तो रूस को चाहिए कि उसे स्वाधीन छोड़ दे।

मेरा ऐसा विचार है कि पश्चिमी योरुप से अमेरिकी फ़ौजों को हटाना तब तक व्यावहारिक राजनीति नहीं जब तक कि यह नाभिकीय शस्त्रों के उन्मूलन के किसी ऐसे समझौते का पूरक न हो जिसे लागू किया जा सके। अगर ऐसा कोई समझौता न हो तो अमेरिका योरुप में रूस के बराबर की स्थिति में नहीं, क्योंकि उसके कब्ज़े में वहाँ कोई इलाक़े नहीं हैं। इस कारण पश्चिमी योरुप को, जो अमेरिका पर अपने बचाव के लिए निर्भर करता है, कुछ भी सुरक्षा महसूस नहीं होगी। इसी तरह के कारणों से क्षेत्रीय प्रश्न निरस्त्रीकरण के प्रश्नों से बिल्कुल अलग नहीं किए जा सकते। और जो भी मेल-मिलाप प्रस्तावित किया जाय उसमें वे सभी समस्यायें आ जानी चाहिए, जिनमें पूर्वी और पश्चिमी जगत उलझे हुए हैं।

२. पश्चिमी एशिया। पश्चिमी एशिया से सम्बन्धित दो दुर्दमनीय समस्यायें है: एक समस्या है तेल और दूसरी इज़राईल। जहां तक तेल का संबंध

है पश्चिमी योरुप की अर्थ-व्यवस्था तो पश्चिमी एशिया के तेल पर ही निर्भर हो गई है। बर्तानवी और फ्रांसीसी साम्राज्यवाद की समृद्धि के दिनों में तो इससे कोई कठिनाई नहीं हुई। फ़ौजी शक्ति के दबाव से पश्चिमी एशियाई देशों को विवश करके उनके तेल-साधनों का पश्चिमी पूँजीपतियों के हितों में शोषण किया जा सकता था पर अब वे दिन लद गये। रूस द्वारा उत्साहित अरब राष्ट्रवाद अब इस स्थिति में है कि वह स्वाधीनता पर इसरार करे और पश्चिमी जगत से पहले वाली शर्तों को मुकाबले कहीं ऊंची लाभदायक शर्तों की मांग करे। यह बात पश्चिमी जगत को पसन्द नहीं, लेकिन उनके लिए संघातक भी नहीं। अरब राष्ट्रवाद से पश्चिमी जगत को समझौता करना ही पड़ेगा और वे सब सहूलियतें देनी ही पड़ेंगी, जिनसे कि अरब राष्ट्र अब भी अपना तेल पश्चिमी योरुप को बेचने पर तैयार हो जायं। पश्चिमी जगत, विशेषतया फ्रांस और ब्रिटेन ने पश्चिमी एशिया की नई शक्तियों की ओर वैर-भाव दिखलाने की ग़लती की है, जब कि रूस ने उनकी ओर मैत्रीपूर्ण रवैया रखा है। यदि तेल की आवश्यकता के कारण पश्चिमी जगत प्राचीन पापों का समर्थन नहीं करने लगेगा, तो ब्रिटेन और फ्रांस दोनों को अपने दृष्टिकोण में मूलभूत परिवर्तन करना पड़ेगा। और यदि रूस और पश्चिमी जगत वास्तविक वितनाव चाहते हैं तो उन दोनों को समझौते का ऐसा उपाय करना पड़ेगा कि पश्चिमी एशियाई देशों के सम्बन्ध में उनकी नीति क्या हो? पश्चिमी जगत को ख़राब सरकारों का समर्थन त्यागना पड़ेगा और रूस को हर समय मुसीबत खड़ी कर देने की अपनी इच्छा छोड़नी पड़ेगी।

मेल-मिलाप को संभव बनाने में सबसे कठिन समस्या जो सामने आयेगी वह है, इज़राईल का प्रश्न। अरब देशों में इज़राईल की ओर जो घृणा का भाव है, वह शोचनीय होते हुए भी समझ में आने योग्य है। केवल अरब देशों में ही नहीं, बल्कि समूचे एशिया में इज़राईल को पश्चिमी साम्राज्यवाद की कारगुज़ारी समझा जाता है। इस तथ्य को कि यहूदी मूल रूपेण एशिया के ही निवासी थे, भुला दिया जाता है और सिर्फ यह बात याद रखी जाती है कि शताब्दियों के दौरान उनकी बहु संख्या पूरे तौर पर पश्चिमी रंग-ढंग अपना चुकी है। लेकिन पश्चिमी जगत एक बार जानबूझ कर इज़राईल राज्य की

रचना करने के बाद और उसकी सुरक्षा की गारंटी देने के बाद उसे तिलांजलि कैसे दे सकता है। मेरे विचार से सिर्फ एक बात की जा सकती है और वह यह कि इज़राईल की भौगोलिक सीमायें निश्चित कर दी जांय और इस बात की ज़िम्मेदारी ली जाय कि रूस और पश्चिमी जगत, दोनों मिल कर इज़राईल राज्य के द्वारा किये गये या उसके विरुद्ध किए गये किसी भी आक्रमण से उसकी रक्षा करेंगे। अगर कोई अनिश्चितता न होती और अगर बड़ी शक्तियां इस मसले पर एकमत होतीं तो यहूदी और अरबी लोग कालान्तर में एक दूसरे के आदी हो जाते और उन्हें यह पता चल जाता कि पारस्परिक घृणा से कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

३. **दूर पूर्व**। लेनिन की सरकार के सुरक्षित होने के बाद पश्चिमी जगत को जो सबसे बड़ा धक्का लगा वह है कम्युनिस्टों द्वारा चीन-विजय। इससे कोई भी इन्कार नहीं कर सकता कि चीनी साम्यवादियों ने फ़ौजी साम्राज्यवाद की प्रवृत्तियां दिखलाई हैं। कोरियाई युद्ध में उनकी दख़लन्दाज़ी न केवल अनुचित थी, बल्कि दुर्भाग्य पूर्ण भी थी। और उनकी तिब्बत विजय जैसी बात यदि कोई पश्चिमी शक्ति करती तो सभी उसकी घोर निंदा करते। लेकिन दुःख की बात है कि इन दुस्साहसों के प्रति पश्चिमी जगत ने अपनी शत्रु भावना को सांघातिक सीमा तक अपनी नीति पर हावी हो जाने दिया है। इसकी आशा कोई भी विवेकशील व्यक्ति नहीं करता कि चीन का नियंत्रण साम्यवादियों के हाथ से निकल जाएगा। यह तो तभी संभव है जब सार्वभौमिक आकस्मिक विपत्ति आ जाय। सभी लोग सभी तरह की वस्तुओं पर से अपने नियंत्रण से हाथ धो बैठें। अमेरिका और संयुक्त राष्ट्र का जान बूझ कर अनजान बने रहना और यह समझना कि चीन का प्रतिनिधित्व चियाङ करते हैं, किसी भी समझदार व्यक्ति के लिए अशोभनीय बात है। मेल-मिलाप के किसी भी उपाय में यह बात शामिल होनी चाहिए कि चीन की साम्यवादी सरकार को संयुक्त राष्ट्र संघ में वही स्थान होना चाहिए जो आज चियाङ को मिला हुआ है। चियाङ की रक्षा करने की वर्तमान नीति का त्याग करना पड़ेगा। जहां तक फ़ारमूसा का सम्बन्ध है, चियाङ के मित्र इसी बात की आशा कर सकते हैं कि बेहतर यही रहेगा वे कि साम्यवादी चीन से इस बाबत कुछ समझौता कर लें:

जब तक चियाङ जीवित रहें फ़ारमूसा उन्हीं का रहे और उनकी मृत्यु के बाद उसे मुख्य देश से सम्पृक्त कर दिया जाय।

जिस प्रकार ब्रिटेन के लिए रणनीति-कौशल की दृष्टि से साइप्रस महत्व-पूर्ण है उसी प्रकार अमेरिका के लिए फ़ारमूसा है। और यह भी नाभिकीय युद्ध के लिए आयोजित पूरी तैयारी से ही सम्बद्ध है। यदि नाभिकीय युद्ध के खतरे को टाला जा सकता है तो इन द्वीपों को उन शक्तियों की सहायता के बिना, जो उन पर नियंत्रण करने की चेष्टा करती रही हैं बेरोक टोक अपने ही ढंग से चलने ही दिया जा सकता है। यह कहा जाएगा कि यदि पश्चिमी जगत साम्य-वादी चीन को रियायतें देगा तो इससे उसका अपमान होगा, लेकिन अगर ऐसा होता भी है तो भी यह निष्फल नीति का पालन करने का दण्ड मात्र होगा। यह बात चाहे जितनी भी शोचनीय हो, परन्तु उस ज़िद से तो कम शोचनीय ही है जो हमें सिर्फ़ बर्बादी की ओर ही ले जाएगी।

क्षमता की दृष्टि से चीन रूस या अमेरिका के बराबर ही शक्तिशाली है और कुछ ही दशाब्दियों में वास्तविक रूप में उतना ही शक्तिशाली हो सकता है। विश्व तब तक सुरक्षित नहीं हो सकता जब तक चीन लड़ने को तत्पर और साम्रा-ज्यवादी है, जैसा होने की भंयकर सम्भावनायें हैं। पूर्व के संभावित आक्रमणों से अपने को बचाने के लिए अमेरिका और योरुप (जिस में रूस भी सम्मिलित है) के कुछ सामान्य हित हैं। सर्वोत्कृष्ट बचाव हथियारों से नहीं, बल्कि बुद्धिमत्ता पूर्ण धैर्य-नीति और विश्व शांति की वास्तविक कामना से होगा। अब तक चीनियों को इस प्रकार की भावना का कोई प्रमाण नहीं मिला है। अब समय आ गया है कि हम कुछ ऐसा करें जिससे अफ़यूनी युद्ध के ज़माने से वे हमारे बारे में जो धारणायें बनाये चले आ रहे हैं उनसे हमें बेहतर समझें।

अध्याय | नौ

अन्तर्राष्ट्रीय सत्ता की ओर क़दम

जिन लोगों ने सुरक्षित शान्ति की शर्तों पर विचार किया है, उनमें से बहु-संख्या इस बात पर राज़ी है कि एक ऐसी **अन्तर्राष्ट्रीय सत्ता** का निर्माण किया जाय, जिसमें अपने निर्णयों को लागू करने की शक्ति हो। आजकल तो यह मत केवल शास्त्रीय मत ही है। जब तक पूर्वी-पश्चिमी तनाव जितना गम्भीर आज है उतना ही रहेगा, दोनों में से कोई भी पक्ष किसी अन्तर्राष्ट्रीय सत्ता के आगे तब तक नहीं झुकेगा जब तक कि वह उस अन्तर्राष्ट्रीय सत्ता पर हावी न हो सके। विवाद का मूलभूत प्रश्न बिल्कुल साधारण है : आप ऐसी दुनिया में रहना पसंद करेंगे जिसमें मित्र और शत्रु दोनों रहें, अथवा ऐसी दुनिया में जिसमें दोनों का अस्तित्व ही न हो ? बात को इस प्रकार सैद्धान्तिक रूप में रखने पर अधिकांश यह चाहेंगे कि उनके शत्रु तो मिट जायं पर उनके मित्र जीवित रहें। परन्तु जब उन का ध्यान इस बात की ओर खींचा जायगा कि इस चाह को मूर्त्त रूप देने के लिए कई अरुचिकर उपाय करने पड़ेंगे तो वे इस प्रकार के उपायों की आवश्यकता मानने से इन्कार करेंगे और उस मार्ग का अवलम्बन करेंगे जो सार्वभौमिक मृत्यु का मार्ग है। मैं इस अध्याय में उन अपेक्षाकृत पीड़ारहित उपायों का सुझाव देना चाहता हूँ जिनसे कि **अन्तर्राष्ट्रीय सत्ता** धीरे-धीरे अस्तित्व ग्रहण कर सकती है। ये क़दम तभी उठाये जाने सम्भव होंगे जब मेल-मिलाप के सम्बन्ध में पिछले अध्यायों में सुझाये गये उपाय कर लिये जायं। और अगर ये उपाय कर लिये गये हैं तो अब

जिन अगले कदमों का सुझाव मैं देने जा रहा हूँ, उन्हें पिछले उपायों का स्वाभाविक और युक्तियुक्त पूरक स्वीकार किया जा सकता है।

सबसे पहिले क्या किया जाना चाहिए ? सबसे पहिले मेल-मिलाप समिति के, जिसकी रूपरेखा सातवें अध्याय में प्रस्तुत की गई है, सलाह देने के अधिकार की पुष्टि की जानी चाहिए। यह समिति सिर्फ पूर्वी और पश्चिमी जगत के झगड़ों में प्रभावी होगी। दूसरे झगड़ों के लिए इससे कम तदर्थ उपाय आवश्यक होंगे।

राष्ट्र संघ और संयुक्त राष्ट्र के निर्माताओं ने उन्हें स्थापित करते समय एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय सत्ता का बीज बोया था, जिसमें युद्ध रोक सकने की क्षमता हो। दोनों संस्थायें निष्फल रहीं। लेकिन शायद संयुक्त राष्ट्र को अभी भी इस ढंग से सुधारा जा सकता है कि यह उस कार्य को पूरा कर सके, जिसकी आशा इसकी स्थापना के समय की गई थी। लेकिन जिन सुधारों की आवश्यकता है वे बहुत ही गम्भीर हैं और कुछ तो ऐसे हैं जो कम से कम अभी तो व्यावहारिक राजनीति के क्षेत्र से बिल्कुल बाहर की चीज़ हैं।

एक ऐसा बहुत महत्वपूर्ण उपाय है जिसे शायद आगामी कुछ वर्षों में किया जा सकता है और वह यह कि संयुक्त राष्ट्र संगठन द्वारा उन सब राज्यों को, जो सदस्यता चाहते हों, सदस्यता प्रदान कर देना। जैसा कि सभी लोग जानते हैं साम्यवादी चीन की समस्या सबसे फ़ौरी मामला है। चीन विश्व में सबसे अधिक आबादी वाला देश है और हो सकता है कुछ दशाब्दियों में सबसे शक्तिशाली देश भी बन जाय। यह स्पष्ट है कि जिस संस्था की स्थापना इस उद्देश्य से हुई हो कि वह अन्तर्राष्ट्रीय और निष्पक्ष हो वह तब तक अपने सभी कार्य पूर्ण सुचारु ढंग से नहीं कर सकती जब तक इस प्रकार का एकम हत्वपूर्ण देश उसकी सदस्यता से वंचित हो। लेकिन चीन इस वंचित-सदस्यता का सिर्फ एक ज्वलन्त उदाहरण है। संयुक्त राष्ट्र संगठन द्वारा आरोपित दायित्वों को मानने की इच्छा प्रकट करने वाले किसी भी देश को सदस्यता से वंचित रखने का उचित कारण कोई नहीं हो सकता।

सभी संघीय संगठनों के सामने एक ही कठिनाई होती है और वह यह कि संघ के कुछ सदस्य दूसरों से अधिक शक्तिशाली होते हैं या अधिक आबादी वाले होते हैं और इसलिए यह बात कुछ उचित नहीं जँचती कि सभी के अधिकार

बराबर ही बराबर हों। इस समस्या का सामना अमेरिका का संविधान बनाने वालों को भी करना पड़ा था। और जैसा कि सुविदित है उन्होंने एक समझौता मूलक समाधान स्वीकृत किया था : सिनेट में सब राज्य बराबर हैं, लेकिन हाउस ऑफ़ रिप्रज़ेंटेटिव्ज़ में उनको अपनी आबादी के अनुपात से स्थान प्राप्त है। यदि छोटे राज्यों को अनुचित स्थान नहीं देना है तो संवर्द्धित संयुक्त राष्ट्र के संविधान में कुछ आवश्यक परिवर्तन करने पड़ेंगे। वर्तमान व्यवस्था के अनुसार असेम्बली में सभी राज्य बराबर हैं, लेकिन कुछ शक्तिशाली राज्यों को सुरक्षा परिषद् में वीटो का अधिकार प्राप्त है। इस सम्बन्ध में नाना प्रकार की आपत्तियां उठाई जा सकती हैं जिनपर मैं अभी विचार करूंगा। एक संभावित समाधान—जिसके सम्बन्ध में मैं यह सोचता हूँ कि उसकी अपनी कुछ कठिनाइयाँ है—तो यह होगा कि विश्व को कई अधीन संघों में बांट दिया जाय जो एक विश्व-व्यापी संघ के सदस्य हों। ये अधीन संघ दो सिद्धान्तों के अनुरूप संगठित किए जायं। एक तो यह कि उन सबकी आबादी लगभग बराबर हो, ताकि प्रत्येक को उस संघों के संघ में जोकि पुनर्गठित संयुक्त राष्ट्र संगठन होगा, एक गिनने में कोई गम्भीर अन्याय न हो और दूसरा सिद्धान्त यह हो कि हर एक के आन्तरिक हित इतने हों जो वाह्य सम्बन्धों के मुकाबले कहीं अधिक हों। औपचारिक आज्ञप्ति न होने पर भी, सामान्यतया, यह बात समझ लेनी चाहिए कि आम तौर पर प्रत्येक अधीन संघ को आन्तरिक मामलों के सम्बन्ध में स्वायत्तता हो और संघ के बीच उठ खड़े होने वाले झगड़ों को संयुक्त राष्ट्र संगठन में विचारार्थ आना चाहिए। इस प्रकार स्थानीय मामलों में **अन्तर्राष्ट्रीय सत्ता** का हस्तक्षेप कम से कम किया जा सकता है।

सन् १९४५ ई० में जब संयुक्त राष्ट्र की रचना हुई थी, उस समय वीटो एक व्यावहारिक आवश्यकता थी। अमेरिका और सोवियत संघ दोनों ही इस विषय पर एकमत थे। जब तक पूर्वी और पश्चिमी जगत आज के मुकाबले अपने सामान्य हितों के सम्बन्ध में और अधिक जागरूक नहीं हो जाते तब तक वीटो के उन्मूलन की कोई आशा नहीं। लेकिन, जब तक वीटो प्रथा है तब तक संयुक्त राष्ट्र में सरकार के लिए आवश्यक मूलभूत विशिष्टता का अभाव रहेगा। सर-

कार की मूलभूत विशिष्टता यही है कि वह उस राज्य, के जिसका वह प्रतिनिधित्व करती है उदण्ड सदस्यों पर भी अपने निर्णय लागू कर सकती है। ऐसे राज्य को हम क्या कहेंगे, जिसमें चोर-उचक्के चोरी के विरुद्ध बने कानूनों पर वीटो अधिकार का प्रयोग कर सकते हों? एक बार इस प्रकार का एक राष्ट्रीय राज्य संगठित भी किया गया था। इस राज्य का नाम था पोलैण्ड। जिस प्रकार मनमाने ढंग से वीटो-अधिकार उस देश में था उससे राज्य बिल्कुल अशक्त हो गया था और इस योग्य भी नहीं रहा कि अपने शक्तिशाली पड़ोसियों ने उसका जो बन्दरबांट किया उसका कुछ भी विरोध कर पाता। फिर भी जब संयुक्त राष्ट्र संगठन की स्थापना की गई तो इसी उदाहरण का अनुकरण किया गया। पूर्वी और पश्चिमी जगत के हित पहिले से ही एक दूसरे के विपरीत थे इसलिए इस मार्ग का अवलम्बन अवश्यम्भावी था। परन्तु, यदि कभी भी कोई ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय सत्ता स्थापित हो जिसमें बड़े पैमाने पर होने वाले युद्ध को रोकने की क्षमता हो, तो वह सत्ता ऐसी ही होगी जिसमें वीटो का अधिकार किसी को भी नहीं होगा। अन्यथा वह सत्ता किसी ऐसे झगड़े का फैसला ही नहीं कर पायेगी, जिसमें कोई पक्ष वीटो का प्रयोग करने के लिए प्रस्तुत होगा।

किसी भी **संघ** की तरह, इसके लिए भी एक सुस्पष्ट संविधान की आवश्यकता होगी, जिसमें इसका निर्णयात्मक उल्लेख होगा कि संघीय अधिकार कौन से होंगे। यह बात भी समझ लेना चाहिए कि ये अधिकार सिर्फ वही होंगे जिनका सम्बन्ध युद्ध की रोक थाम से होगा। निश्चय ही धार्मिक या आर्थिक ढांचे या राजनैतिक प्रणाली में **संघीय सत्ता** कोई भी हस्तक्षेप नहीं करेगी। यदि कुछ राष्ट्र संघीय लोकतन्त्र चाहते हैं और दूसरे किसी प्रकार की तानाशाही पसन्द करते हैं तो उन्हें अपनी रुचि के अनुसार आचरण करने की पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। इसी प्रकार अगर कुछ साम्यवाद को अच्छा समझते हैं और दूसरे पूँजीवाद को, तो उन्हें यह स्वतन्त्रता भी होनी चाहिए। मेरा विचार तो यह है कि उन्हें इस बात की स्वतन्त्रता भी होनी चाहिए कि वे अपने यहां व्यक्तिगत स्वाधीनता के सम्बन्ध में जितनी सीमायें उचित समझें उतनी थोप सकें। मेरा ऐसा विचार नहीं है कि **संघीय सत्ता** को अपने अधीन किसी राज्य पर प्रकाशन-स्वातन्त्र्य या अन्य कोई

स्वातन्त्र्य छोड़ना चाहिए। इन स्वातन्त्र्यों की महत्ता को भली प्रकार समझ कर भी मैं यह बात कहता हूँ। मैं यह बात इसलिए कहता हूँ क्योंकि बाहरी राज्य हस्तक्षेप के औचित्य को 'केवल युद्ध की रोकथाम' करने के तर्क से सिद्ध करते हैं।

मुझे भय है कि हम काल्पनिक क्षेत्रों में काफी आगे निकल आए हैं। लेकिन यदि विश्व में शान्ति को सुरक्षित रखना है तो अभी एक और अन्तिम काल्पनिक आदर्श क़दम है जो हमें उठाना चाहिए। एक ऐसा **अन्तर्राष्ट्रीय सैन्य बल** होना चाहिए जो इतना शक्तिशाली हो कि असंदिग्ध रूप से किसी भी राष्ट्र या राष्ट्रों के संभावित संश्रय पर विजय प्राप्त करके। इस शर्त के अभाव में, अन्तर्राष्ट्रीय सत्ता की आज्ञप्तियां लागू नहीं हो सकेंगी और फिर वे लोग कैलॉग-समझौते जैसी खाली-पीली घोषणाओं के निम्न स्तर पर आ जायेंगी। अन्तर्राष्ट्रीय सत्ता को जिस तरह वह आवश्यक समझे उस प्रकार का सैन्य-बल संगठित करने और जिस प्रकार का कर आवश्यक समझे उसे लगाने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। इसे ऐसे क़ानूनी अधिकार भी हों कि वह किसी भी राज्य के सैन्य-दल की सीमायें निर्धारित कर सके, ताकि वह उसकी सत्ता के लिए कभी गम्भीर चुनौती न बन सकें।

यह सब चाहे जितना काल्पनिक आदर्श दिखाई पड़ता हो, परन्तु बारूद के आविष्कार के बाद राष्ट्रीय राज्यों में जो कुछ हुआ उसका समीपी सामानान्तर है। **मध्ययुग** में समूचे पश्चिमी योरुप में शक्तिशाली ज़मींदार अपनी गढ़ी में बैठे केन्द्रीय शासन की अवज्ञा कर सकते थे। तोपों से गढ़ियों को नष्ट करने की क्षमता मिलने के बाद ही केन्द्रीय शासन इस योग्य हो सका कि वह सामन्तशाही ज़मींदारों को अपने नियन्त्रण में रख सके। उत्तर मध्ययुग में जो स्थिति बारूद ने उत्पन्न की हमारे समय में वही बात नाभिकीय शस्त्रों को करना चाहिए। मेरे कहने का यह तात्पर्य नहीं कि उन्हें वास्तव में इस्तेमाल किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय शासनों की सत्ता को लागू करने के लिए बारूद को आन्तरिक अपराधियों के विरुद्ध बहुधा इस्तेमाल करने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। और इसी प्रकार यदि किसी भी राष्ट्रीय सरकार के पास नाभिकीय शस्त्र नहीं हैं और सिर्फ **अन्तर्राष्ट्रीय सत्ता** के पास उनके निर्माण के साधन हैं तो नाभिकीय शस्त्रों के वास्तविक प्रयोग की भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

अन्तर्राष्ट्रीय सशस्त्र सेना के प्रभावी और सुरक्षित होने के लिए कुछ शर्तें हैं, जिनको पूरा करना आवश्यक है। इसमें राष्ट्रीय राज्यों से एकत्र बड़े-बड़े फ़ौजी दस्ते नहीं होने चाहिए, क्योंकि इस प्रकार फ़ौजी दस्तों में जातीय राज्य-भक्ति रह जाना स्वाभाविक है। और ऐसी आज्ञप्ति के अनुपालन के लिए उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता, जिसे वे नापसन्द करते हों। यह आवश्यक होगा कि प्रत्येक बटालियन, स्क्वेड्रन और सबमेरीन में विभिन्न राष्ट्रों के व्यक्ति हों, ताकि किसी स्वराष्ट्र-हित को लेकर विद्रोह किया ही न जा सके। जब तक पूर्वी और पश्चिमी जगत में मतभेद हैं, तब तक यही अच्छा रहेगा कि सुप्रीम कमाण्ड (सर्वोच्च आदेश) का दायित्व किसी तटस्थ राष्ट्र के सदस्य के कन्धों पर हो।

जब भी कभी अन्तर्राष्ट्रीय सशस्त्र सेना का सुझाव दिया जाता है तो बहुतेरे लोग तुरन्त ही कुछ इस प्रकार की आपत्तियां उठाते हैं जो सिविल पुलिस दल पर भी लागू हो सकती हैं। वे कहते हैं कि इस तरह की सशस्त्र सेना सैनिक-क्रान्ति कर सकती है और सिविल अधिकारियों पर निरंकुश शासन स्थापित कर सकती है। सिद्धान्त के रूप में यह बात राष्ट्रीय सशस्त्र-सेना के सम्बन्ध में तो संभव है, और विश्व के उन स्थानों में जहां स्थायित्व कम है वहां यह बात कभी-कभी हो भी जाती है; लेकिन साम्यवादी और ग़ैर साम्यवादी दोनों प्रकार के देशों में इस प्रकार की सुस्थापित पद्धतियां हैं, जिनके द्वारा न केवल रूस और अमेरिका में ही बल्कि नाज़ी जर्मनी में भी, सिविल अधिकारियों ने अपनी सर्वोच्चता बनाये रखी है। मुझे इस बाबत सन्देह करने का कारण नहीं दिखाई देता कि ये पद्धतियां अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उतनी ही प्रभावी क्यों नहीं होंगी।

किसी भी ढंग से लें, जीवित बचे रहने के लिए जातीय राज्यों के परस्पर सम्बन्धों पर सरकारी और क़ानूनी नियन्त्रण आवश्यक हो गया है। मेरा यह मतलब नहीं कि दिन-प्रतिदिन के लिए ऐसा नियन्त्रण आवश्यक है। कुछ समय तक संसार कगारवादी नीति पर चल सकता है और सौभाग्यवश ही कगार से न गिरे। लेकिन यह सौभाग्य अनिश्चितकाल तक तो नहीं बना रह सकता। अगर वर्तमान नीतियां जारी ही रहीं तो देर-सबेर विध्वंस हो सकता है। केन्द्रीय सत्ता के अधीन होना उतना ही अरुचिकर हो सकता है, जितना कि मध्ययुगीन ज़मीं-

दारों को राजाधीन होना लगता था, लेकिन अन्ततः यह उतना ही आवश्यक भी है। हालांकि **अन्तर्राष्ट्रीय सत्ता** अभी व्यावहारिक राजनीति नहीं है, लेकिन यह उन सभी लोगों का, जो संसार को नाभिकीय युद्ध के विध्वंसों से सुरक्षित रखना चाहते हैं, अन्तिम लक्ष्य होना चाहिए।

मैंने ऊपर वर्णित कुछ पद्धतियों को काल्पनिक आदर्श कहा है और मैं सोचता हूँ कि वर्तमान राजनैतिक वातावरण में उन्हें इसी तरह समझना भी चाहिए। मेरा विचार है कि मेल-मिलाप कराने और पारस्परिक हठोन्माद को कम करने की दिशा में लम्बे अर्से तक और गम्भीर ढंग से काम करना आवश्यक होगा, तभी कहीं शक्तिशाली अन्तर्राष्ट्रीय सेना की स्थापना की भूमिका बन पायेगी। लेकिन ऐसे लोग भी हैं जो यह समझते हैं कि इस प्रकार की सेना की स्थापना के सम्बन्ध में मैंने जितना समय मान रखा है वह उससे कहीं अधिक शीघ्रता से की जा सकती है। और मुझे इस बात का बहुत सन्तोष है कि ब्रिटेन की **कन्जर्वेटिव पार्टी** इस प्रकार के दृष्टिकोण की पैरवी बहुत ही प्रभावी ढंग से कर रही है। **कन्जर्वेटिव पॉलिटिकल सेन्टर** ने **ए वर्ल्ड सिक्योरिटी अथॉरिटी** (विश्व सुरक्षा सत्ता) नाम से एक पैम्फ़लेट प्रकाशित किया है,जिसमें संसद के दस कन्जर्वेटिव सदस्यों के लेख हैं। इस पैम्फ़लेट में जिन उपायों की पैरवी की गई है वे उल्लिखित उपायों से बहुत मिलते-जुलते है। पैम्फ़लेट लेखकों ने ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री और श्री डन्कन सैण्डीज़ के, जो रक्षा मन्त्री हैं, वक्तव्यों को आधार माना है, जिनमें इन्होंने इस मत का समर्थन किया है कि संसार की मुसीबतों का एकमात्र युग प्रवर्तक हल यही है कि विश्व सरकार की स्थापना हो जाय। मैं आशा करता हूँ कि लेखकगण अपने दृष्टिकोण में ठीक हैं, कि व्यावहारिक क्या है? लेकिन भय मुझे इस बात का है: उन्हें शक्तिशाली नेताओं अर्थात् अमेरिका और रूस से बहुत तगड़े प्रतिरोध का मुकाबिल करना पड़ेगा। आज संसार का सामना विवेक और मृत्यु के बीच होने वाली दौड़ से है। मृत्यु के पैरोकार बतलाते हैं कि विवेक मानवीय कार्य-कलापों में बहुत ही कमज़ोर रहता है और इस बात में दुखदायी सच्चाई भी है। जब तक स्थिति ऐसी है, भविष्य के किसी भी पूर्वानुमानित स्वरूप में आशा और भय में एक संतुलन करना ही चाहिए।

अध्याय | दस

दृष्टिकोण में कुछ आवश्यक परिवर्तन

पिछले पृष्ठों में जिन उपायों की पैरवी की गई है उनमें से कुछ ऐसे हैं जिनका विश्व के वर्तमान वातावरण में पश्चिमी और पूर्वी, दोनों जगतों में घनघोर विरोध होगा। मानव जाति को बनाये रखने के लिए कम से कम असंभाव्य शर्तों के रूप में इनकी पैरवी नहीं की गई है। लेकिन कुछ व्यापक पूर्वाग्रहों के कारण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर स्पष्ट ढंग से विचार नहीं हो पाता और इस क्षेत्र में बुद्धि के उन्मुक्त होकर विचरण कर पाने में कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। इस अध्याय में मैं इन में से सबसे महत्वपूर्ण रुकावटों पर, और उन्हें किस प्रकार पार किया जा सकता है इस पर विचार करना चाहता हूँ।

१. हठोन्माद

पश्चिमी जगत में ऐसे बहुतेरे लोग हैं, और मैं माने लेता हूँ कि पूर्वी जगत में भी हैं, जो जिस विचार धारा को वे नापसन्द करते हैं उसकी विजय के मुकाबले मानव-जाति के संहार को अच्छा समझेंगे। वे मानते हैं कि क्रेमलिन (सोवियत रूस) या वाल स्ट्रीट (अमेरिका) द्वारा की गई बुराइयां इतनी बड़ी हैं कि दोनों में से किसी की एकछत्र प्रभुता में विश्व में जीवन जीवित रहने योग्य नहीं होगा और यदि भावी पीढ़ियों को जन्म लेने से रोक दिया जाय तो यह उनके प्रति दयालुता ही होगी। इस आधार पर यह तर्क दिया जाता है कि अगर दोनों पक्षों में से किसी एक की विजय को बिना नाभिकीय युद्ध के नहीं रोका जा

सकता, तो नाभिकीय युद्ध करना चाहिए; भले ही इसमें सार्वभौमिक मृत्यु की आशंका क्यों न हो। इस प्रकार के दृष्टिकोण को मैं दानवी हठोन्माद के प्रदर्शन के सिवा और कुछ नहीं मान सकता। विचित्र असंगति है कि पश्चिमी जगत में जो इस दृष्टिकोण की हिमायत करते हैं, वे यह कहते हैं कि वे लोकतन्त्र की रक्षा कर रहे हैं, हालाँकि वे इस बात से भलिभांति परिचित होंगे कि विश्व में जनमत संग्रह किया जाय तो बहुत बड़ा बहुमत उनके विपरीत होगा। और ये हठोन्मादी यह भी सोचते है कि वे केवल लोकतन्त्र ही नहीं, स्वतंत्रता की भी रक्षा कर रहे हैं। कभी-कभी मुझे आश्चर्य होता है कि वे (मान लीजिए) भारत के निवासी से बहस करते समय अपनी बात किस प्रकार रखेंगे। बहुत संभव यही है कि भारतीय कहेगा वह रूसी और पश्चिमी, दोनों विचारधाराओं में से कुछ बातों को अच्छा समझता है और कुछ को बुरा। परन्तु अधिकांश मानवों का जीवन जिससे बनता है उसका महत्तर भाग विचारधाराओं से स्वाधीन होता है और दोनों में से किसी भी प्रणाली में रह सकता है। हमारे हठोन्मादी को उसे यह बताना पड़ेगा कि इस प्रकार का दृष्टिकोण ख़राब है—वास्तव में इतना ख़राब कि इसके लिए तो मृत्यु दण्ड दे देना चाहिए। मेरा विचार है कि वह अपने साथ मेल-मिलाप करने वाले भारतीय को यह बात मानने पर राज़ी नहीं कर पाएगा कि इस प्रकार का दण्ड लोकतन्त्र के नाम पर या स्वाधीनता के नाम पर मिलना ही चाहिए।

मैं सोचता हूँ कि जिस वाद-विवाद के सम्बन्ध में हम यहां विचार कर रहे हैं उसे लाभकर रूप में काफ़ी व्यापक बनाया जा सकता है। राजनीति की दृष्टि से शिक्षित देशों में भी मानव जाति का विशाल बहुमत अपने समय के काफ़ी अधिक हिस्से में बहुतेरे ग़ैर राजनीतिक मस्लों में लड़ा रहता है; खाने-पीने और सोने में लगा रहता है; प्रेम और पारिवारिक बातों में लगा रहता है; और अपने काम की सफलता या असफलता में लगा रहता है, तथा अपनी तन्दुरुस्ती के हिसाब से जीवित रहने की प्रसन्नता या दर्द में लगा रहता है। यदि आप किसी सामान्य व्यक्ति से, गम्भीरता पूर्वक और व्यावहारिक बात के रूप में यह कहें कि 'आप अपने से भिन्न राजनीतिक और आर्थिक प्रणाली में रहना पसन्द करेंगे या यह चाहेंगे

कि समूची मानव-जाति पीड़ा देने वाली मृत्यु का शिकार हो जाय ?' तो वह आप को पागल समझेगा—और उसका यह सोचना कुछ अनुचित भी नहीं होगा। वही व्यक्ति, इस प्रश्न का उत्तर उस प्रकार से देने में जैसे कि एक स्वस्थ मानस वाला देगा, हिचकिचा जाएगा, जिसने विवाद में मग्न हो कर मानव मूल्यों का संवेदन ही खो दिया है। जो लोग साम्यवाद से संघर्ष करने में या पूँजीवाद से संघर्ष करने में ही लगे हुए हैं, वे इस प्रकार के विश्वास से अन्तर्ग्रस्त हो सकते हैं कि तुलना करते समय उनके लिए और किसी बात का महत्व न हो। केवल वाद-विवाद में व्यस्त रहकर उन्होंने दिन प्रतिदिन की खुशियों और ग़म को अपनी दृष्टि से बिल्कुल ओझल हो जाने दिया है।

लेकिन जब दुविधा यह हो कि मानव-जाति मटियामेट हो जाय या जिस विचारधारा से हम घृणा करते हैं वह जीत जाय, तो दूसरे ऐसे कम सामान्य तर्क हैं जिन पर विचार करना चाहिए। भूतकाल में बहुतेरी बुरी सरकारें और बुरी प्रणालियां रही हैं। उदाहरण के लिए, चंगेज़खाँ भी उतना ही बुरा, उतना ही हठोन्मादी था जितना कि साम्यवादी-विरोधियों का स्तालिन के बारे में विश्वास है। परन्तु उनकी निरंकुशता हमेशा नहीं रही, और यदि उनके शत्रुओं में उनकी नृशंसता के आगे सिर झुकाने के स्थान पर मानव जीवन को मिटा देने की शक्ति होती, तो वर्तमान काल में किसी को भी इस बात पर अफ़सोस न होता कि वे उस शक्ति का उपयोग नहीं कर सके। अगर कोई यह मानता है कि एक क्षण के लिए भी विश्व-विजय कर पाने पर क्रेमलिन की नृशंसता और वाल स्ट्रीट की नृशंसता, जैसा भी अवसर हो, हमेशा के लिए बनी रहेगी, तो उसमें इतिहास की गति समझने की बिल्कुल क्षमता नहीं और वह किसी बेकार के हौव्वे का असंतुलित शिकार बना हुआ है।

उस काल के लोगों को जो विषय उतने ही महत्वपूर्ण लगते थे जितना कि आज के हठोन्मादियों को साम्यवाद या पूँजीवाद का विषय लगता है, वैसे विषय भूतकाल में बार-बार उठे हैं और समय के प्रवाह ने यह दिखला दिया है कि वे उतने भयंकर नहीं हैं जितने कि समकालीन लोगों ने मान लिया है। गिबन की पुस्तक का एक अंश सुप्रसिद्ध ही है जिसमें उसने इस पर विचार किया

है कि अगर मुसलमानों ने तूर-युद्ध में विजय प्राप्त कर ली होती तो क्या होता ? उस समय के ईसाइयों को यह मस्ला उतना ही फ़ौरी लगता था कि जितना कि हमारे अपने समय का मस्ला सिनेटर मैकार्थी या स्तालिन को लगता था। लेकिन इस बात में संदेह ही है यदि मुसलमान उस प्रसिद्ध युद्ध में परास्त होने के स्थान पर जीत गये होते तो वर्तमान संसार का स्वरूप आज से कुछ अधिक भिन्न होता।

जब तक विश्व में मनुष्य-जाति है, मनुष्य अपने अच्छे और कुछ बुरे प्रयोजनों का अनुसरण करेंगे ही। ऐसी सरकार-प्रणालियां होंगी जो मानव के भले के लिए सब कुछ करें। लेकिन अगर मानव-जाति ही नहीं रहती तो इन्सानों ने अच्छे और बुरे का जो ताना-बाना क्रमशः बुना है, वह सभी खंडित हो जायेगा। जिन लोगों का विश्वास है कि इस या उस प्रणाली से कभी भी कुछ अच्छाई नहीं निकलेगी, उनका यह निराशावाद मेरी तो समझ से बाहर है।

धार्मिक युद्धों की व्यर्थता के अनुभव से धर्मोन्माद धीरे-धीरे कम हो गया है। कैथॉलिक और प्रोटेस्टेंट, ईसाई और मुसलमान दोनों ने एक दूसरे के अस्तित्व को वहन करना सीख लिया है, जबकि एक समय यह बिल्कुल असंभव समझा जाता था। परन्तु हमारे समय के नित-नए विवादों के कारण लोग वह सहिष्णुता भूल गये हैं, जिसे सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में धीरे-धीरे सीखा था। जब लॉक ने धार्मिक सहिष्णुता के पक्ष में अपने विचार व्यक्त किए थे, उस समय बहुत से ऐसे लोग थे, जिनकी भावनाओं को उसके विचारों से बड़ी ठेस लगी थी। और आज भी बहुत से लोग ऐसे हैं जिनकी भावनाओं को ठेस पहुँचती है यदि उसके तर्कों को वर्तमान विवादास्पद विषयों पर लागू किया जाय। परन्तु जिन कारणों से उसके मत सफल हुए उनका उसके अपने युग के वर्तमान वाद-प्रतिवादों से कोई भी सम्बन्ध नहीं था। ये कारण जितने प्रामाणिक अब हैं उतने ही तब थे और हमारे समय में भी सहिष्णुता के विरुद्ध दलीलें वही हैं जो पहले लोयला और कैल्विन ने दी थीं। पूर्वी और पश्चिमी जगत दोनों में बहुत से लोग उन कारणों को भूल गये हैं जिनसे सहिष्णुता पनपी थी। यदि हम अपने दुखों का कोई हल कभी निकालना चाहते हैं तो हमें उन कारणों को याद रखना चाहिए। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि कोई भी अच्युत नहीं, हम भी

नहीं। और कोई भी अन्ध विश्वास इतना पक्का नहीं कि जो व्यापक क्रूरता के लिए एक बहाने का काम दे सके।

२. राष्ट्रीयता

विश्व सत्ता की रचना की ओर उठाए गए किसी क़दम के विपरीत कुछ तोड़-फोड़ करने वाली शक्तियां ऐसी कठिनाइयां खड़ी कर देती हैं कि कभी-कभी ऐसा लगता है कि उन पर पार नहीं पाया जा सकता। वर्तमान काल में विश्व-एकता के मार्ग में सबसे उल्लेखनीय रुकावट साम्यवाद और पूँजीवाद के बीच परस्पर विरोध है। लेकिन एक रुकावट और भी है; अर्थात् राष्ट्रीयता। साम्य-वाद और पूँजीवाद एक दूसरे को सहन करना सीख भी लें तो भी राष्ट्रीयता रहेगी ही। प्रत्येक राष्ट्र की राष्ट्रीयता के स्वरूप में कुछ तो अपने राष्ट्र की उत्कृष्टता में विश्वास और कुछ उन विश्वासों से उत्पन्न हो जाने वाले माने हुए नैतिक आचार सिद्धान्त में सम्मिलित होते हैं।

मैं मुख्यतः राष्ट्रीयता के बुरे पहलुओं का ज़िक्र करूंगा, लेकिन यह बात मैं बहुत ज़ोर देकर कहना चाहूँगा कि इसके कुछ अच्छे पहलू भी हैं। अगर समस्त विश्व में एक ही तरह के लोग होते, तो यह कोई अच्छी बात न होती। विभिन्न राष्ट्रों में मतभेद होने से सांस्कृतिक रूप में एक वांछनीय विभिन्नता होती है और वे साहित्य और कला के लिए उद्दीपक होते हैं। राष्ट्रीयता तभी ख़तरा बनती है जब इसके कारण हथियारबंद लड़ाई छिड़ जाय। यह बहुत ही अच्छी बात है कि एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्रों के प्रति हिंसक शत्रुता के सिवा और सभी बातों की की स्वाधीनता हो। यदि कभी **अन्तर्राष्ट्रीय सत्ता** की रचना हुई तो इसे राष्ट्रीय राज्यों के उन मस्लों में हस्तक्षेप करने की सीमा भी रखनी पड़ेगी जिनसे कि अन्त-र्राष्ट्रीय शान्ति भंग होने का डर हो। अगर यह सत्ता इससे अधिक कुछ करेगी तो यह निरंकुशता होगी।

लेकिन, इतना कह देने के बाद अब हमें अपना ध्यान राष्ट्रीयता के ख़तर-नाक पहलुओं की ओर देना चाहिए। पूँजीवाद और साम्यवाद की तरह राष्ट्री-यता अकेली विश्व व्यापक प्रणाली नहीं, बल्कि प्रत्येक राज्य में अलग-अलग प्रणाली है। इसमें मूलरूप से सामूहिक आत्म-कीर्ति-गान और यह आस्था है कि

अपने राष्ट्र के हितों का अनुसरण करना ही ठीक है; भले वह दूसरे राष्ट्रों के हित के चाहे जितने विपरीत हों। अठारहवीं शताब्दी में, ब्रिटेनवासी यह नारा लगाते थे कि 'ब्रिटेनवासी कभी दास नहीं होंगे' और जितने ग़ैर ब्रिटेनवासियों को गुलाम बना सकते थे उन्हें गुलाम बनाने लगे। कुछ ही समय बाद फ्रांसीसियों ने घोषणा की : 'अशुद्ध रक्त से हमारी क्यारियों की सिंचाई हो'—और यह अशुद्ध रक्त आस्ट्रिया वासियों का था। अभी हाल में मुझे एक जर्मन वासी का पत्र मिला, जिसमें उसने लिखा था कि 'डॉयट्शलैण्ड ऊबर अलेज़' का मतलब यह नहीं कि जर्मनी को दुनिया पर हुकूमत करनी चाहिए बल्कि इसका मतलब तो यह है कि जर्मन को सिर्फ़ जर्मन हितों के बारे में सोचना चाहिए। इस प्रकार के अनेकों उदाहरण दिये जा सकते हैं। परन्तु यह सहज-प्रकृति इतनी जानी-पूछी है कि और कोई उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं।

यह कुछ अजब लगता है कि अपने राष्ट्र की अच्छाइयों पर ज़ोर देने को सद्गुण माना जाय। उस व्यक्ति के बारे में हम क्या सोचेंगे जो यह घोषणा करे : 'मैं सभी दूसरे व्यक्तियों से नैतिक और बौद्धिक दृष्टि से उच्चतर हूँ और इसी उच्चता के कारण मुझे अपने सिवा और सभी के हितों की उपेक्षा करने का अधिकार है ?' निस्सन्देह, ऐसे बहुत लोग हैं जो सचमुच यह महसूस करते हैं। लेकिन यदि वे अपनी यह भावना जरा खुले ढंग से प्रकट कर दें और उस पर आचरण भी कर दें, तो उनके बारे में लोग बुरी धारणा बना लेंगे। लेकिन इसी प्रकार के काफ़ी व्यक्ति जो किसी क्षेत्र विशेष में बसे हुए हों, सामूहिक रूप से इस प्रकार की घोषणा करें तो उन्हें उच्च विचार वाला, महान और साहसी समझा जाता है। वे एक दूसरे के बुत स्थापित करते हैं और स्कूली बच्चों को राष्ट्रीय दंभ के अशिष्ट पैरोकारों की प्रशंसा करने की शिक्षा देते हैं।

हम राष्ट्रीयता के इतने आदी हो गए हैं कि यह मानवीय स्वभाव का अन्तर्निहित भाग बन गई है। लेकिन इतिहास से यह दृष्टिकोण प्रमाणित नहीं होता। पुरातन समय में यहूदियों को छोड़कर और किसी में राष्ट्रीयता की भावना नहीं के बराबर थी। मध्ययुग में जब धर्म-प्रचारक समूचे कैथॉलिक जगत में मुक्त भाव से विचरते थे, उनकी पक्षपातपूर्ण भावनायें अपने राष्ट्र के सम्बन्ध में नहीं, अपने

आवश्यकता की बाबत कह चुका हूँ, और ठीक उसी प्रकार सहिष्णुता की आवश्यकता राष्ट्रों के बीच भी है। ऐसा कर पाना कोई आसान बात नहीं होगी। लेकिन यह एक ऐसा कार्य है जिसे विश्व शान्ति के सुरक्षित होने और किसी **अन्तर्राष्ट्रीय सत्ता** को सर्वमान्य स्वीकृति मिलने से पहिले ही करना पड़ेगा। यह मूल रूप में एक शिक्षात्मक कार्य है। यदि शक्तिशाली सरकारें हार्दिक रूप से विश्व शान्ति की इच्छुक हो जायं तो इस दिशा में कुछ किया जा सकता है। यही हमारी बहस का अगला विषय है।

३. शिक्षा

यदि बड़ी शक्तियां इस समझौते पर राज़ी हो सकती हैं कि अब युद्ध नीति-साधन के रूप में नहीं रहेगा, तो जिन चीज़ों में परिवर्तन करना ही पड़ेगा उनमें से एक चीज़ होगी, शिक्षा। अधिकांश देशों में शिक्षा मुख्यतः जातीय राज्य के हाथों में है, और इसलिए स्वाभाविक ही ऐसे दृष्टिकोण की ओर झुकी हुई शिक्षा दी जाती है, जो सम्बन्धित राज्य के हितों के अनुकूल हो। अब तक यह नहीं विचारा गया कि एक राज्य के हित दूसरे राज्य से बिल्कुल एक से होते हैं। और पहिले समय में न तो यह बात सदैव ही या न आमतौर पर सच होती रही है। आधुनिक तकनीकों के विकास के फलस्वरूप और विशेषकर नाभिकीय शस्त्रों के कारण विभिन्न राज्यों के बीच सैनिक प्रतियोगिता बेकार हो गई है। और विभिन्न देशों के हितों में पहिले के किसी भी समय के मुकाबले कहीं अधिक अभिन्नता आगई है। फलस्वरूप, अब यह किसी एक देश का स्वार्थ नहीं कि वह दूसरे देशों के मुकाबले अपनी उच्चता पर ज़ोर दे या अपने लड़कों और लड़कियों में यह विश्वास जमाये कि वह युद्ध में अजेय है। और न यही बात अच्छी है कि शूर-वीरता की शान को ऐसे पेश किया जाय कि और सब चीजों से वही प्रशंसनीय लगे।

विशेषकर इतिहास की शिक्षा में परिवर्तन किया जाना चाहिए। यह बात सिर्फ निचली कक्षाओं के लिए ही लागू नहीं होती, बल्कि उच्चतम वर्गों की शिक्षा के सम्बन्ध में भी यह बात ठीक है। हेगेल ने, जिसने यह घोषणा की थी कि उसने समूचे मानव इतिहास का सर्वेक्षण कर लिया है, तीन ऐसे व्यक्तियों को

चुना था जिनमें सबसे अधिक उल्लेखनीय गुण थे। ये व्यक्ति थे : सिकन्दर, सीज़र और नेपोलियन। उसके अपने ही देश के शास्त्रीय उत्तराधिकारी कहीं अधिक राष्ट्रवादी थे और वे जर्मनी के नायकों को अच्छा समझते थे। फ्रांस में बालकों को यह शिक्षा दी जाती थी कि शूरवीरता में तो फ्रांसीसी ही उत्कृष्ट हैं, और अंग्रेज़ बच्चों को सिखाया जाता था कि अंग्रेज शूरवीरता के क्या कहने! इस प्रकार की बातों को बन्द करना ही पड़ेगा। मैं बहुत पहिले यह सुझाव दे चुका हूँ, हालांकि मुझे इस सुझाव के माने जाने की बिल्कुल आशा नहीं थी, कि प्रत्येक देश में उस देश का इतिहास विदेशियों द्वारा लिखित पुस्तकों से पढ़ाया जाना चाहिए। निस्सन्देह, इन पुस्तकों में कुछ पक्षपात झलकेगा लेकिन विद्यार्थियों में जो विरोधी पक्षपात होगा, वह इस पक्षपात का विरोध करेगा और इस प्रकार जो परिणाम निकलेगा, वह काफ़ी उचित होगा।

लेकिन सिर्फ़ इतिहास को ही भिन्न ढंग से पढ़ाने की आवश्यकता नहीं। (शायद अंकगणित को छोड़कर बाकी) सभी विषयों को मनुष्य की उन्नति के एक हिस्से के रूप में, और जो कठिनाइयाँ उसके सामने आज भी हैं और जो पहिले आईं तथा इन कठिनाइयों को जीतने में किए गये उसके प्रयत्नों की शृंखला के रूप में, पढ़ाया जाना चाहिए। युद्धों पर ज़ोर देना बन्द कर देने से एक ख़तरा यह है कि पढ़ाना उत्तेजक नहीं रहेगा। लेकिन यह ख़तरा, युद्ध के अलावा जो कठिनाइयाँ और ख़तरे आयें उनका सामना करने में जो उत्तेजक प्रतियोगितायें हुईं, उन पर ज़ोर देकर, बिल्कुल बचाया जा सकता है।

कोई भी यह कह सकता है कि मनुष्य को बुद्धिमत्ता की ओर क्रमशः बढ़ने के क्षेत्र में तीन बड़ी प्रतियोगिताओं का सामना करना पड़ता है। प्रकृति से प्रतियोगिता, इंसानों-इंसानों के बीच प्रतियोगिता और मनुष्य की अपनी अन्तरात्मा से प्रतियोगिता। इनमें से प्रत्येक का अपना इतिहास है, अपना महत्व है।

प्रकृति से प्रतियोगिता, जो खाद्य-प्राप्त करने की समस्या से प्रारम्भ हुई, धीरे-धीरे प्राकृतिक प्रक्रियाओं की वैज्ञानिक समझ और ऊर्जा के स्रोतों का प्रयोग करने की तकनीकी शक्ति की ओर बढ़ाती है। इसी क्षेत्र में मनुष्य ने अब तक महानतम विजय हासिल की है। और यह बहुत सम्भव है कि निकट भविष्य में और भी कई

पहिले से भी बड़ी जीतें हासिल कर ली जायं। प्रकृति पर मनुष्य का बढ़ता हुआ अधिकार अपने आप में उत्तेजक है और सिर्फ स्कूल में पढ़ाये जाने के समय को छोड़कर बच्चों को ऐसा महसूस भी होता है। स्कूलों में यह विषय उतना ही रोचक हो सकता है, अगर अध्यापक योग्य हों और स्वीकृत शिक्षा-पद्धति उचित हो। साहसिक कार्यों के प्रति प्रेम को, जो अब तक युद्ध का प्रेरक रहा है, प्राकृतिक ज्ञान के क्षेत्र में व्यापक उन्मुक्त वातायन मिल सकता है। अमेरिका, अफ्रीका, ध्रुवों और हिमालय क्षेत्रों में खोज-बीन को आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करके चलचित्रों के रूप में रजतपट पर दिखाया जा सकता है। अन्तरिक्ष यात्रा की भावी संभावनाओं को, जिन्हें आजकल मुख्यत: निराधार कल्पना समझ कर छोड़ दिया गया है, और गम्भीरता पूर्वक लिया जा सकता है, ताकि उनमें दिलचस्पी बनी रहे। और बच्चों में से जो अत्यन्त साहसी हों उन्हें भी यह दिखाया जा सकता है कि ऐसा विश्व जिसमें युद्ध ही न हों, उस विश्व में भी साहसिक और संकट पूर्ण कार्यों को करके कीर्ति प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार की प्रतियोगिता के लिए कोई सीमा निर्धारित नहीं। प्रत्येक विजय किसी दूसरी विजय की भूमिका है—और विबेकमय आशा की कोई भी सीमारेखायें निश्चित नहीं की जा सकतीं।

दूसरे प्रकार का संघर्ष यथा, मनुष्यों का मनुष्यों के प्रति संघर्ष ही जब दो दलों में सशस्त्र मुठभेड़ के रूप में प्रकट होता है, उसी मुड़भेड़ के सबंध में इस पुस्तक में विशेषकर विचार किया गया है। विवेकमय सर्वेक्षण करने पर यही पता चलेगा कि यदि मानव प्रगति को जारी रखना है तो इसे समाप्त करना ही पड़ेगा। मैं पूर्ण शान्तिवादी की तरह, यह नहीं कह रहा हूँ कि विभिन्न लोगों के दलों के बीच हुई मुठभेड़ से पहले कभी उपयोगी प्रयोजन सिद्ध नहीं हुए हैं। मेरे विचार से यह बात सही नहीं है। बार-बार ऐसा हुआ है कि वहशी लोग फलेफूले मैदानों और सभ्य नगरों में पहाड़ों से उतर कर आये हैं और इससे पहले कि सभ्य शक्तियां उनकी ध्वंसात्मक शक्ति को कुचल पातीं उन्होंने भारी नुक्सान पहुँचाया है। लेकिन सभ्य मनुष्यों द्वारा अधिकाधिक क्षेत्रों पर अधिकार और आधुनिक शस्त्रों के फलस्वरूप बढ़ती हुई शक्ति ने बर्बरों द्वारा रोमन साम्राज्य के विध्वंस जैसे विनाशकारी कार्यों के भय को बिल्कुल

ही कम कर दिया है। अब बर्बरों से कोई खतरा नहीं है। इसके विपरीत, अब खतरा उन लोगों से है जो सभ्यता की पंक्ति में सबसे आगे हैं। शिक्षा का एक कर्त्तव्य यह भी होना चाहिए कि बच्चों के दिमागों में सभ्य जीवन के गुण और उन प्रतियोगी आदर्शों का, जो अब प्रचलन योग्य नहीं रह गये हैं, अस्तित्व बना रहने के कारण जो आवश्यक खतरे हैं उनको, स्पष्ट रूप से बिठा दिया जाय।

मानव-जाति के भारी बहुमत में बाहरी संघर्ष के साथ ही उन विभिन्न आवेगों और इच्छाओं के बीच एक आन्तरिक संघर्ष भी होता है जो एक दूसरे से मेल नहीं खातीं। इस प्रकार के संघर्षों से निबटने के लिए नैतिकता की प्रणालियां हैं और कुछ अंश तक वे बहुधा सफल भी होती हैं। लेकिन मेरा विचार है कि मानव जीवन की बदलती हुई स्थितियां समय-समय पर नैतिक दृष्टिकोण में भी आवश्यक परिवर्तन कर देती हैं। विशेषकर आज के समय में जिस प्रकार का परिवर्तन आवश्यक है वह यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने ही दलों को छोड़ दूसरे मानवों के दलों को संभावित प्रतियोगियों के स्थान पर संभावित सहयोगियों के रूप में देखना सीखे। लेकिन यह पूरा विषय बहुत बड़ा है और यदि हम इसी पर विचार करने लगे तो हम अपने केन्द्रीय थीम से बहुत दूर भटक जायेंगे।

मानव जीवन के दूसरे विभागों की तरह ही शिक्षा में भी आज विश्व की सबसे बड़ी आवश्यकता यही है कि भय के स्थान पर आशा का संचरण हो और वह इस सुन्दर बात को भली भांति समझले कि मानव-परिवार सहयोग से अपनी उत्कृष्ट शक्ति-सम्भावनाओं को उपलब्ध कर ले तो जीवन कितना सुन्दर नहीं बन जायगा!

परिशिष्ट | एक

इकतरफ़ा निरस्त्रीकरण

मेरे कुछ आलोचकों ने इस बात पर जोर दिया है कि कुछ आनुमानिक परिस्थितियों में मुझे यह विचारना चाहिए कि पूर्वी जगत या पश्चिमी जगत, दोनों में से कोई भी यदि इकतरफ़ा निरस्त्रीकरण कर दे तो कितना अच्छा होगा। मेरे आलोचकों ने मेरी शर्तों को अनदेखा कर दिया है और उन्होंने अपनी बात इस तरह कही है कि मानी हुई परिस्थितियों में मैंने सिर्फ पश्चिमी जगत के लिए ही निरस्त्रीकरण की नीति की पैरवी की हो और पूर्वी जगत के लिए नहीं। इस बात के लिए मेरे आलोचकों को ही पूरी तौर पर दोष नहीं दिया जा सकता। मुझे शुद्ध रूप से शास्त्रीय बहस में खींच लिया गया है। लगता है जैसे यह भी व्यावहारिक राजनीति का एक विषय हो। यह बात सभी जानते हैं कि अमेरिका और सोवियत संघ दोनों में से कोई भी इकतरफ़ा निरस्त्रीकरण नहीं करेगा। इसलिए यह प्रश्न कि दोनों में से कोई क्या इतनी बुद्धिमत्ता दिखलाएगा केवल सैद्धान्तिक आचार-शास्त्रीय व्यायाम ही होगा। सैद्धान्तिक रूप से नहीं बल्कि व्यावहारिक दृष्टि से यदि कहूँ तो कहूँगा कि मैं उन पद्धतियों को तलाश करता हूँ जिनकी पैरवी करने से पहिले पूर्व-पश्चिम के बीच के तनाव को कम करने और उसके बाद पेचीदा प्रश्नों पर इस आधार पर समझौतों की बातचीत की जाय कि जिससे किसी पक्ष को भी निवल लाभ न पहुँचे। इस प्रकार की बातचीत सन्तोष-जनक हो इसलिए इसमें यह बात सम्मिलित रहना चाहिए कि दोनों पक्ष नाभिकीय

अस्त्रों को तिलाँजलि दे देंगे और साथ ही निरीक्षण की भी कोई उचित प्रणाली होगी ।

यह सच है कि सैद्धान्तिक रूप से नहीं बल्कि व्यावहारिक रूप से मैं इस बात की पैरवी करता हूँ कि ब्रिटेन उद्जन बम का त्याग कर दे और अमेरिका तथा सोवियत संघ के अलावा और शक्तियों तक उद्जन बम के विस्तार को रोका जाय । मेरा ऐसा विचार नहीं कि यदि ब्रिटेन उद्जन बमों का इकतरफ़ा त्याग करदे तो शक्ति-सन्तुलन पर कोई अधिक प्रभाव पड़ेगा, लेकिन यह मैं ज़रूर सोचता हूँ कि अगर कई शक्तियों ने उद्जन बम बना लिया तो नाभिकीय युद्ध का खतरा बहुत बढ़ जायगा । इसलिए ब्रिटेन द्वारा उद्जन बमों के इकतरफ़ा त्याग का प्रश्न दोनों गुटो से किसी एक के द्वारा सामान्य इकतरफ़ा निरस्त्रीकरण के प्रश्न से बिल्कुल अलग प्रश्न बन जाता है ।

इस समय मेरे आलोचकों और मेरे बीच जो विवाद का प्रश्न है वह तभी उठ सकता है जबकि बातचोत के सब प्रयत्न बेकार हो जायं । मेरे आलोचक तो इस तरह कहते हैं मानो मैं यह चाहता हूँ कि अमेरिका की सरकार यह घोषणा कर दे कि वह अपने सभी लक्ष्यों को छोड़ने के लिए तैयार है और यह सुझाव देते हैं कि सोवियत सरकार के बारे में मैं इस प्रकार के विचार नहीं रखता । मैं समझता हूँ यह प्रश्न बिलकुल अवास्तविक है, क्योंकि आदर्श बुद्धिमानों की बात चाहे जो भी हो, पर यह बात सुनिश्चित है कि कोई भी पक्ष एक दूसरे को पूरी तरह समर्पण नहीं करेगा । लेकिन, चूँकि प्रश्न को महत्वपूर्ण समझा जाता है, इसलिए एक बार फिर मैं अपना मत त्रुटिहीन ढंग से पेश करने की पूरी-पूरी कोशिश करूंगा ।

भावात्मक कारणों को उड़ा देने के विचार से मैं दो शक्ति-गुटों, अ और ब की बाबत कहूँगा और यह बात बिल्कुल अनिर्णीत छोड़ दूँगा कि इनमें से कौन साम्यवादी है और कौन साम्यवादी-विरोधी । तर्क का कल्पित आधार यह होगा कि इन दो गुटों में युद्ध छिड़ा तो मानव-जाति नेस्तनाबूद हो जायगी । यह बात भी माने लेते हैं कि इन दो गुटों में से एक इतना हठोन्मादी है कि वह विवेकपूर्ण समझौते के स्थान पर मानव-जाति की समाप्ति बेहतर मानता है । मेरा ऐसा विचार

है कि इस प्रकार की परिस्थिति में जिस गुट में कम हठधर्मी है, यदि उसकी ृष्टि में मानव-जाति की खुशहाली सर्वोपरि है तो वह युद्ध की अपेक्षा कुछ रियायत दे देना अच्छा समझेगा। यह बात मैं दोनों पक्षों के लिए समान रूप से कह रहा हूँ।

दोनों शिविरों में ऐसे लोग हैं जो यह सोचते हैं कि 'दुश्मन' की जीत की अपेक्षा मानव-जाति का सफ़ाया कमतर बुराई होगी। यह दृष्टिकोण चाहे **अ** का हो या **ब** का, मैं इसे पागलपन समझता हूँ। पश्चिमी जगत में मेरे कुछ आलोचक और श्री ख्रूशोफ़ के कुछ समर्थक इस बात से तब सहमति प्रकट करते हैं जब एक पक्ष के लोग इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं, पर यदि दूसरी ओर के लोग भी उसे मानते हैं तो सहमति प्रकट नहीं करते। मैंने जो यह मत प्रकट किया है कि नाभिकीय युद्ध में फंसने से तो कुछ मस्लों पर झुक जाना बेहतर है, वह दोनों पक्षों के लिए ही है और मेरा विचार ऐसा भी नहीं है कि इस बात का प्रभाव दोनों में से किसी एक पक्ष पर दूसरे से अधिक पड़ेगा।

यह तर्क बिल्कुल ठीक है कि अगर आप पहले से यह कह दें कि आप को ज्यादा दबाया गया तो आप झुक जायेंगे तो आप बातचीत सफलता पूर्वक नहीं चला सकते। अगर मैं **अ** या **ब** दोनों में से किसी की सरकार होता तो मैं इस तरह की कोई भी घोषणा नहीं करता। लेकिन इससे उसका उस शुद्ध शास्त्रीय प्रश्न पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता कि अगर कभी कोई बिल्कुल भीषण स्थिति उत्पन्न हो गई तो क्या करना बुद्धिमत्ता होगी। फिर भी मैं एक बार और इस बात का इसरार करूंगा कि महान मूल्य चुका कर भी नाभिकीय युद्ध को बचाने के पक्ष में दृष्टिकोण रखना ऐसी बात है जो दोनों पक्षों पर समान रूप से लागू होती है—और जहां तक मैं जांच सकता हूँ वहां तक उसे एक न एक पक्ष ग्रहण कर ही लेगा। मैंने जो मत प्रकट किया है उसके बारे में यह सोचना कि वह एक पक्ष के लिए ही उपयोगी है, मेरे साथ पूर्णतया अन्याय होगा। सच तो यह है, कि मैंने अपने विचार दोनों पक्षों के सामने समान रूप से घोषित कर दिये हैं और मैंने उनकी जो पैरवी की है वह साम्यवादी देशों और अमेरिका दोनों में ही व्यापक रूप से प्रकाशित हो चुकी है।

मैं उस ग़लतफ़हमी को दूर करना चाहूँगा जो मैं समझता हूँ उस इन्टरव्यू

के कारण फैली है, जिसमें मेरे विचारों के एक छोटे से अंशमात्र को अभिव्यक्ति मिली। मेरा विचार है यदि पश्चिमी और पूर्वी जगत के राजनेता बुद्धिमानी से काम लें तो नाभिकीय युद्ध और आत्म-समर्पण दोनों से ही बच पाना कुछ कठिन नहीं है। मैं तो व्यवहारतः इस बात की पैरवी करता हूँ कि पूर्वी और पश्चिमी जगत यह समझकर कि सह-अस्तित्व ही अनिवार्य है और युद्ध केवल विध्वंसकारक व्यर्थता है आपस में समझौते करें। मैं इस बात की पैरवी किसी बनावटी तार्किक धर्म-संकट के परिणाम स्वरूप नहीं करता। मेरी यही इच्छा है कि दोनों पक्ष यही समझें कि युद्ध से जो कुछ उपलब्धि वे चाहते हैं, वह नहीं मिल सकती और परिणाम स्वरूप जिन मस्लों पर विवाद है वह सिर्फ़ बातचीत से ही तय किए जा सकते हैं।

मेरे बहुत से आलोचक इस बात पर अपने आपको ही धोखा देते हैं, हालांकि वे आम तौर पर यह घोषणा करते रहते हैं कि वे स्वतँत्रता को मूल्यवान मानते हैं। वे यह नहीं सोचते कि जो लोग मृत्यु के मुकाबले जीवन को पसंद करते हैं, वह चाहे, साम्यवाद के मातहत हों या पूँजीवाद के, उन्हें इस बात की स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वे दोनों में से कोई भी विकल्प चुनें। न केवल साम्यवादी राष्ट्रों या पूँजीवादी राष्ट्रों के निवासियों को, बल्कि सभी ग़ैर-जानिब राष्ट्रों के निवासियों को अत्यन्त आवश्यक स्वतंत्रता प्राप्य नहीं, और यह स्वतंत्रता है, अस्तित्व बनाये रखने की स्वतंत्रता का चयन। इस धारणा को कि साम्यवादी विश्व से और कोई विश्व अच्छा नहीं, अथवा पूँजीवादी विश्व से और कोई अच्छा विश्व नहीं, किसी सैद्धान्तिक तर्क से झुठलाना कठिन है। लेकिन मैं सोचता हूँ कि जिनके मन में इस प्रकार की धारणा है, उन्हें अपने आप से ही यह प्रश्न करना चाहिए, कि क्या उन्हें यह अधिकार है कि वे अपने मत को उन लोगों पर थोपें जिनकी धारणा वैसी नहीं; और वह भी उन सबों को मौत के घाट उतार कर! यह तो धार्मिक उत्पीड़न का निकृष्टतम स्वरूप है। मानवीय इतिहास में अब तक किसी भी ऐसी चीज की पैरवी नहीं हुई है।

असंगति

उद्जन बम-युद्ध के विरुद्ध मेरे अभियान के दौरान में की गई हाल की कार्यवाहियों के विरोधियों ने एक ऐसी बात उठाई है जिसे वह मेरी असंगति कहते हैं। उन्होंने मेरे उन वक्तव्यों का प्रयोग किया है जो मैंने दस वर्ष पहिले दिये थे और उनके सहारे उन्होंने अभी हाल में मैंने जो वक्तव्य दिये हैं उनके बल को कम करने की कोशिश की है। मैं इस मामले को हमेशा के लिए स्पष्ट कर देना चाहता हूँ।

जब सिर्फ़ अमेरिका के पास ही अणुबम था और जब अमेरिकी सरकार **बरूच प्रस्ताव** नामक योजना की, जिसका लक्ष्य अणु-शक्ति के उपयोगों का अन्तर्राष्ट्रीयकरण था, पैरवी कर रही थी, मैं यह सोचता था कि अमेरिका का पस्ताव बुद्धिमत्ता पूर्ण और उदार है। मुझे ऐसा प्रतीत होता था यदि बरूच योजना को स्वीकार कर लिया गया तो इस से अणु-अस्त्रों की होड़ समाप्त हो जायगी। इस होड के भयंकर खतरे पश्चिमी जगत के सभी जानकर लोगों पर स्पष्ट थे। कुछ समय तक तो ऐसा संभव लगा कि सोवियत संघ इस योजना पर राज़ी हो जायगा, क्योंकि रूस को तो इससे कुछ खोने के स्थान पर कुछ लाभ ही होता। दुर्भाग्यवश, स्तालिन के शक्की स्वभाव को लगा जैसे इसमें भी कुछ चाल है और रूस ने अपने आण्विक अस्त्र बनाने का फ़ैसला कर लिया। उस समय मेरा विचार था कि रूस पर दबाव डालने से कुछ फ़ायदा होगा और इस दबाव डालने के लिए अगर सिर्फ आण्विक अस्त्रों के अन्तर्राष्ट्रीयकरण के मस्ले

पर युद्ध की धमकी भी आवश्यक हो तो दे डाली जाय। आज की तरह तब भी मेरा उद्देश्य यही था कि ऐसे युद्ध को रोका जाय, जिसमें दोनों पक्षों के पास विश्वव्यापी विध्वंस करने की शक्ति हो। लेकिन पश्चिमी जगत के राजनेता अपनी तकनीक की आनुमानिक उच्चता से आश्वस्त थे। वे यह विश्वास करते थे कि नाभिकीय युद्ध-कौशल के क्षेत्र में इस बात का कोई भय नहीं कि रूस ग़ैर साम्यवादी विश्व की बराबरी हासिल कर लेगा। इस बाबत उनका यह विश्वास ग़लत साबित हो चुका है। इस से यह परिणाम निकलता है कि अगर नाभिकीय युद्ध को रोकना है तो यह दस वर्ष पहिले अपनाये गये तरीकों जैसे तरीकों से न होकर, नए ही तरीकों से होना चाहिए।

मेरे आलोचकों का शायद यह विचार है कि अगर एक बार आपने एक नीति की पैरवी की है तो फिर परिस्थितियां बिल्कुल बदल जाने पर भी आप वैसा ही करते रहिए। यह बात बिल्कुल बेहूदा है। अगर कोई व्यक्ति एक ट्रेन में किसी ख़ास मुक़ाम पर पहुँचने के लिए चढ़ता है और रास्ते में ट्रेन किसी कारणवश रुक जाती है और आगे नहीं जा सकती, तो अगर वह व्यक्ति ट्रेन से उतर कर किसी और तरीक़े से अपने मुक़ाम पर पहुँचना चाहता है तो क्या आप उस पर असंगति का अपराध लगायेंगे? उसी प्रकार, कोई व्यक्ति किन्हीं विशेष परिस्थितियों में किसी विशेष नीति की पैरवी करता है, पर दूसरी परिस्थितियों में वह बिल्कुल दूसरी ही नीति की पैरवी करेगा।

मैं कभी भी सम्पूर्ण रूप से शान्तिवादी नहीं रहा और किसी समय भी इस मत का प्रतिपादक नहीं रहा कि जो युद्ध छेड़ेंगे उन सब की निन्दा की जाय। मैंने तो यही दृष्टिकोण रखा है कि कुछ युद्धों का औचित्य सिद्ध हो चुका है और कुछ का नहीं। और इस मत को मैं सामान्य बुद्धि की बात ही मानता हूँ। वर्तमान स्थिति इसलिए विचित्र है कि अगर महायुद्ध छिड़ जाय तो दोनों पक्षों के लड़ाके और तटस्थ देश दोनों ही समान रूप से हरा दिये जायेंगे। यह एक नई स्थिति है और इसका तात्पर्य यही है कि अब भी युद्ध को नीति-साधन की तरह इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। यह ठीक है कि युद्ध के भय का इस्तेमाल अब भी किया जा सकता है, पर सिर्फ पागल ही ऐसा करेगा। दुर्भाग्यवश, कुछ लोग

पागल होते हैं और अभी बहुत दिन नहीं बीते जब एक शक्तिशाली राज्य का नेतृत्व इसी प्रकार के पागलों के हाथ में था। हमें इस बात का विश्वास नहीं कि ऐसा फिर नहीं होगा, और अगर ऐसा हुआ तो ऐसा विनाश होगा जिसकी तुलना में हिटलर द्वारा ढाये हुए जुल्मो-सितम ऐसे लगेंगे मानो मक्खी ने काट लिया हो। आज विश्व सुई की नोक पर अस्थायी साम्य में संतुलित है। स्थायित्व हासिल करने के लिए नए तरीके चाहिए। मैं और मेरी तरह से सोचने वाले और लोग पूर्वी और पश्चिमी जगत को यह समझाने का प्रयत्न कर रहे हैं कि इन्हीं नए तरीकों को अपनाना चाहिए।

मैं इस से इन्कार नहीं करता कि मैंने जिस नीति की पैरवी की है वह समय-समय पर बदली नहीं। जैसे-जैसे परिस्थितियां बदली वैसे-वैसे यह भी बदली है। समझदार लोग निर्दिष्ट लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अपनी नीतियों को परिस्थितियों के सानुकूल ढाल देते हैं। और जो ऐसा नहीं करते वे मूर्ख होते हैं।

हालांकि मैं यह स्वीकार नहीं करता कि मेरे विचारों में कोई असंगति रही है, लेकिन मैं पूरी तरह से सच्चा नहीं रहूँगा, यदि यह न मानूँ कि मेरी भावावस्था और मेरी भावनायें इतने गहन ढंग से बदल गई हैं, जैसी कि सिर्फ दाव-पेंच के कारण ही नहीं बदलतीं। अगले युद्ध या उस से अगले युद्ध में या उस से भी अगले युद्ध में, मानव-जाति के विनाश की भयंकर सम्भावनायें किसी भी प्रकार की उस कल्पना के लिए सौम्यकारक हैं, जिसने इस पर गम्भीरता से विचार किया है और यह समझ लिया है कि इस पूरे विषय पर, केवल अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर ही नहीं बल्कि मानव-जाति और उसकी क्षमताओं के बारे में भी मूलभूत और बिल्कुल नए ढंग से सोचने-विचारने की आवश्यकता है। अगर आप किसी व्यक्ति से ऐसे किसी मस्ले पर झगड़ रहे हों, जिसे आप और वह दोनों एक साथ ही महत्वपूर्ण समझते हों, लेकिन तभी एक आंधी तूफ़ान आप दोनों और आप के समूचे पड़ोस को नष्ट-भ्रष्ट करने की तैयारी पर तुला हो, तो आप दोनों शायद वह झगड़ा भूल जायेंगे। वर्तमान काल में, मेरे विचार से मानव-जाति को उस आंधी-तूफ़ान का बोध कराना है और उस मस्ले को भुलाने की चेष्टा करनी है, जो संघर्ष उत्पन्न करती है। मैं जानता हूँ कि जो वर्षों तक साम्यवाद या पूँजीवाद की (जो

बात भी लागू होती हो) बुराइयों पर बड़ी-बड़ी बातें करता रहा हो, उसके लिए इस मस्ले को अपेक्षया महत्वहीन समझना कठिन है। लेकिन भले ही यह कठिन हो, परन्तु यदि मानव जाति का अस्तित्व बनाये रखना है तो साम्यवादी शासकों और पश्चिमी जगत में नीति का निर्धारण करने वाले लोगों को यह लक्ष्य हासिल करना ही पड़ेगा। अब मैं जिस नीति की पैरवी करता हूँ उसका उद्देश्य इसी उपलब्धि को संभव बनाना है।